आईने-अकबरी

खंड १, अंक १

भावान्तरकार

रामलाल पाण्डेय.

अन्तर्राष्ट्रीय जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान्

डा० भगवानदास जी, एम. ए., डी. लिट्., का अभिमत।

"अबुलफ़ज़्ल की आईने-अकबरी विश्व-साहित्य की महान कृतियों में से है। यह हमारे मस्तिष्क के नेत्रों के सम्मुख सोलहवीं शताब्दी के भारत का सजीव चित्र उपस्थित कर देती है। यह बड़े सौभाग्य की बात है, कि कानपुर के पण्डित रामलाल पाण्डेय के ध्यान में यह बात आई कि वे उत्कृष्ट गुण सम्पन्न एवं चिरस्थायी महत्व के इस ग्रंथ को भाषान्तरित करके तीव्र गति से बढ़ते हुए हिन्दी साहित्य को समृद्धि-शाली बनावें। ....आपका अनुवाद बिल्कुल ठीक अनुवाद है और बड़ी साहित्यिक योग्यता तथा विशिष्टता के साथ किया गया है। अनुवादक ने बड़े परिश्रम के साथ अध्ययन और खोज करके अनेक व्यक्तियों के जीवन चरित्र और इसी प्रकार की और अनेक आवश्यक बातें टिप्पणियों के रूप में स्थान स्थान पर अपने ग्रंथ में समाविष्ट करदी हैं, जिनसे पुस्तक का मूल्य और भी अधिक बढ़ गया है। उन्होंने निःस्वार्थ भाव एवं सात्विक वृत्ति से प्रेरित होकर ही इसमें अपनी सारी शक्तियां जुटा दी हैं। ....मुझे पूर्ण आशा है कि वे लोग, जिन्हें उत्कृष्ट हिन्दी साहित्य की विशुद्ध उन्नति अभीष्ट है, पाण्डेय जी को इस उत्तम ग्रंथ के प्रकाशन एवं प्रचार में सहायता प्रदान करेंगे। भारतवर्ष की यूनीवर्सिटियां इस विषय में लोक मत के प्रभाव का अनुभव करने लगी हैं, और उन्होंने अब शिक्षा के माध्यम के रूप में जीवित मातृ-भाषाओं के उपयोग का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया है। ....इस प्रकार की सब यूनीवर्सिटियां पं० रामलाल पाण्डेय को अपने परिश्रम को पूर्ण और सफल करने में अनेक प्रकार से सहायता दे सकती हैं और अपनी अपनी शक्त्य-नुसार उन्हें सब प्रकार की सहायता देना उचित है।"

आईने-अकबरी के ग्राहकों के लिए नियम।

(१) आईने-अकबरी का प्रति अंक प्रति तृतीय मास में प्रकाशित होगा, जिसमें २०×२६ साइज़ के २८ पौण्ड और ४० पौण्ड के काग़ज़ पर छपे हुए रायल अठपेजी ६४ पृष्ठ होंगे।

(२) जो सज्जन कम से कम १००) एकमुश्त पेशगी देंगे, उनकी सेवा में प्रकाशन के क्रम से श्रेष्ठ संस्करण की एक प्रति भेजी जाया करेगी; और ग्रन्थ के अन्त में उनका नाम भी प्रकाशित किया जायगा।

(३) स्थायी ग्राहकों के लिए वार्षिक मूल्य श्रेष्ठ संस्करण का ७) और साधारण संस्करण का ४॥) होगा।

(४) एक प्रति का मूल्य डाक-व्यय के अतिरिक्त श्रेष्ठ संस्करण का २) और साधारण संस्करण का १।) होगा।

पत्र व्यवहार का पता :—

व्यवस्थापक,

विद्या-मन्दिर,

कानपुर।

अबुलफ़ज़ल-ए-मुबारक-ए-अल्लामी

कृत

आईने-अकबरी

भाषान्तरकार तथा संपादक

रामलाल पाण्डेय

संवत १९९१ विक्रमी

सन १९३५ ईसवी

अबुलफ़ज़ल की भूमिका।

परमात्मन्[1]!

हे[2] रहस्य मय! माया पट में छिपे तुम्हारे भेद अनन्त,
कैसा था आरम्भ तुम्हारा नहीं जानता है यह अन्त।
आदि अन्त भगवन्! दोनों हैं इस प्रकार से तुम में लीन,
अविनाशी साम्राज्य तुम्हारा दोनों उसमें चिह्न विहीन।

वाणी मेरी मूक हुई है, और हुई जिह्वा पाषाण,
कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं, पा न सका उसका परिमाण[3]।
चिन्ता शक्ति चकित है मेरी यही आपका है गुणगान,
आप में मैं नहीं नाथ हूँ यही आपकी है पहिचान।

१—आईने-अकबरी में "अल्लाहो-अकबर" पाठ है, जिसका शाब्दिक अर्थ "ईश्वर महान है" या "महान-ईश्वर" होता है। भाषान्तर में इसी का भावार्थ द्योतक संबोधनात्मक "परमात्मन्" शब्द प्रयोग किया गया है।

२—फ़ारसी की मौलिक रचना इस प्रकार है :—

ऐ! हमा दरपर्दा निहां राज़े-तो;
बेख़बर अंजाम ज़ि आग़ाज़े-तो।
दर तो हम आग़ाज़ो हम अंजाम गुम;
हर दो बशहरे-क़िदमत नाम गुम।
पाय-सख़ुन लंगो ज़बाँ संगलाख़;
बाले-क़दम तंगो बियाबां फ़राख़।
हैरते-अन्देशा सिपासे-तो बस;
बे ख़ुदेयम रुए शनासे-तो बस।

३—"पा न सका उसका परिमाण" यह चरणांश मूल रचना में नहीं है। अशक्यता के स्पष्टीकरण एवं "कानन है विस्तीर्ण, पंगु मैं" चरण की पूर्ति के लिए जोड़ दिया गया है।

उस ईश्वर को पहचानने-योग्य वह मनुष्य है, जो मौखिक वन्दना को छोड़कर व्यावहारिक रूप से उसके गुणगान में दत्त-चित्त हो, और सृष्टिकर्ता के कुछ अद्भुत चरित्र लिखकर अक्षय सौभाग्य प्राप्त करे, साथही लिखते समय अपनी मनोवृत्ति को लेखनी के छेद से मिलाये रक्खे[१]। आशा है कि ऐसा करने से, उसके राजत्व का तेज लेखक पर आभासित हो और इस प्रदीप्त ज्ञान द्वारा उसके सागर के कुछ बूंद तथा गहन बन की धूल का कोई परमाणु ग्रहण करके वह चिरस्थायी आनन्द प्राप्त करे और वाणी एवं कर्म के खण्डहर को समृद्धशाली बनावे।

मुबारक-सुत अबुलफ़ज़्ल के ध्यान में—जो कि ईश्वर का धन्यवाद, राज-स्तुति की भांति गान करता है और नृपोचित मणियों को वर्णन के सूत्र में पिरोता है—यह बात नहीं है कि वह उस विचित्र संसार को नया रंग देने वाले तथा मणिमय सृष्टि को भूषित करने वाले (अकबर) के यशस्वी कार्यों तथा श्रेष्ठ गुणों को प्रकट करे। यह बुद्धिमानी भी नहीं है कि वह प्रत्यक्ष बातों को प्रदर्शित करे और निज को ज्ञानवानों का उपहास्यास्पद बनावे। वह (अबुलफ़ज़्ल) केवल अपने ज्ञान-मणि को संसार - हाट में उपस्थित करता है और इस कार्य को हाथ में लेने पर अपने हृदय को आत्म - प्रशंसा में तत्पर करता है। ऐसे गुरुतर कार्य को—जिसको स्वर्गस्थ भी कठिनता से पूरा कर सकते हैं—करने का साहस करना अपनी प्रशंसा करना नहीं, वरन् अशक्यता और संकल्प की तुच्छता का प्रकट करना है। इस ग्रंथ की रचना में लेखक का अभीष्ट यह है कि वह इस शुभ समय के अन्वेषकों के हृदय में, ज्ञान-क्षेत्र के सजग विचरणकर्ता एवं सांसारिक और ईश्वरीय रहस्यों के ज्ञाता (सम्राट्) की बुद्धि की महत्ता, साहस-विशालता तथा कर्मों की श्रेष्ठता स्थिर करे और संसार की भावी संतति के लिए एक श्रेष्ठ उपहार प्रस्तुत करे। साथ ही जीवन, कृतज्ञता प्रकाशन से भूषित हो जाय और परलोक यात्रा का संबल प्रस्तुत हो जाय। आशा है कि इस जिज्ञासा के तृष्णा बन (संसार) में— जिसमें प्रकृतियाँ नाना प्रकार की, वासनाएं अगणित, न्याय दुर्लभ और पथप्रदर्शक दुष्प्राप्य हैं—लोग इस ज्ञान-विधान द्वारा कर्तव्य कर्म जान लेंगे और ज्ञान तथा कर्म के असीम अस्तव्यस्त कानन में भटकने से मुक्ति पा जायंगे। इसी उद्देश्य से सम्राट् के कुछ आईन लिखता हूँ और दूर तथा निकट वर्तियों के लिए नीति-शास्त्र उपस्थित करता हूँ। यतः पूर्णतया विचार यह

१ अर्थात् जो बात अन्तःकरण में हो, वही लिखे।

है कि सम्राट की व्यवस्थाएं लिखूं इस लिए अनिवार्यतः उसके उच्च पद की महिमा वर्णन करनी पड़ेगी और इस श्रेष्ठ पद के सहायकों का हाल चित्रित करना पड़ेगा।

अद्वैत न्यायकारी (ईश्वर) की दृष्टि में पादशाही से उत्कृष्ट पद और कोई नहीं है; और सभी कार्य कुशल उसके ऐश्वर्य के सोते से तृप्त होते हैं। राजत्व का, जन समूह की राजद्रोहिता का उपचार होना एवं जनता को शासन में रखना ही, उसकी (बादशाही की) आवश्यकता के सम्बन्ध में प्रमाण चाहने वालों के लिए सबूत है। शब्द 'पादशाह' का अर्थ भी इसी कथन का समर्थक है; क्योंकि 'पाद' के अर्थ स्थायित्व और अधिकार के हैं, तथा 'शाह' असल और स्वामी को कहते हैं। अतएव पादशाह स्थायित्व और अधिकार का मूल स्वामी है। यदि शासन का आतंक न हो तो कलह का उपद्रव कैसे दबे और अपना बनाव चुनाव कैसे हो, मनुष्य जाति लोभ और क्रोध के बोझ से विनाश-कुंड में गिर जाय; समस्त संसार शोभा रहित हो जाय, और थोड़े ही समय में समृद्ध जगत उजाड़ हो जाय। राजा के न्याय के प्रकाश से अनेक जन-समूह प्रफुल्ल वदन तथा हर्षपूर्वक आज्ञा पालन का मार्ग ग्रहण करलेते हैं, और बहुत लोग उसके दंड के भय से अपने अत्याचारों के हाथ खींच कर विवश होकर सत्पथ पर चलते हैं। 'शाह' उसे भी कहते हैं जो अपने समकक्ष पदस्थों में श्रेष्ठ हो, जैसे 'शाह सवार[1]' और 'शाह राह'। लोग दामाद के लिए भी शाह शब्द प्रयुक्त करते हैं। संसार रूपी पत्नी सम्राट् से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ती है और यह मनमोहनी उसकी दासी होती है।

सरल चित्त और अदूरदर्शी मनुष्य, सच्चे राजा को स्वार्थी शासक से पृथक नहीं कर सकते। वे करें भी कैसे, क्योंकि परिपूर्ण कोष, सेना की अधिकता, योग्य सेवक, आज्ञाकारी प्रजा, बुद्धिमानों की विपुलता, गुणियों का बाहुल्य और सुख सामग्री की प्रचुरता दोनों के पास होती है। परन्तु सूक्ष्मदर्शी सत्यनिरीक्षकों पर उनका भेद प्रकट होता है। उपरोक्त वस्तुएं पहले शासक के पास स्थायी रूप से रहती हैं और दूसरे के पास से शीघ्र नष्ट हो जाती हैं। सच्चा राजा अपने चित्त को उस सामग्री के बन्धन में नहीं फंसने देता है; उसका पूर्ण उद्देश्य अत्याचार के लक्षण-उन्मूलन करना तथा मनुष्य की योग्यताओं[2] को काम में

---

१ सवारों में प्रधान सवार; मार्गों में राज मार्ग।

२ अर्थात् वह ऐसे साधन उपस्थित करता है कि जिनके द्वारा मनुष्य का मानसिक विकाश हो और उसकी योग्यता प्रकट हो सके।

लाना होता है। शाँति, सुख, पवित्रता, न्याय, शील, वचन-निर्वाह, (वफ़ा) सत्यता और निष्कपटता का आधिक्य, इत्यादि उसके परिणाम होते हैं। पिछला (स्वार्थी शासक) दिखावटी काम करने, अपने बनाव चुनाव, जनता को दास बनाये रखने और भोग विलास में संलग्न रहता है; परिणाम स्वरूप (उसके राज्य में) भय, अशांति, उपद्रव, अत्याचार, विश्वासघात और चोरी का बाज़ार गर्म होता है।

राजत्व, अनुपम न्यायकारी ईश्वर का प्रकाश, विश्वभास्कर सूर्य[१] का आलोक, सिद्ध-शास्त्रों की सूची और सर्व गुणों की खानि है। प्रचलित भाषा में इस प्रकाश को **फ़र्र-इ-एज़दी** (ईश्वरीय तेज) कहते हैं, और पुराने लोगों की बोल चाल में **कियान ख़ोरा** (अत्युत्कृष्ट दीप्त मंडल)। मनुष्य बिना किसी बिचवानी के कहे सुने बादशाह की सहायता करने में अपना हाथ लगा देते हैं और सब लोग उसके दर्शन करते ही अपनी वन्दना का मस्तक उसकी सेवा-भूमि पर झुका देते हैं। इसके अतिरिक्त उससे अनेक श्रेष्ठ गुण प्रकट होते हैं। **१–मानव पितृत्व**–भांति भांति के मनुष्य उसकी कृपा से सुख पाते हैं: सम्प्रदायों के विरोधी होने पर भी द्वेष की धूल नहीं उठती। श्रेष्ठबुद्धि शासक समय का हृदय पहिचानता है और उसके अनुकूल आचरण करता है। **२–हृदय विशालता** बुरी बातें देखकर वह भड़क नहीं उठता, और अज्ञान का उपद्रव उसके चित्त को फांस नहीं लेता। शूरता उसके पैर जमा देती है। ईश्वर प्रदत्त धीरता से, उसकी अपराधी को दंड देने की शक्ति, प्रौढ़ हो जाती है, और दोषी की भीषणता उसे उसकी पूर्ति (दंड देने) से नहीं रोकती। उसकी उदारता से छोटे बड़े अपना मनोरथ सिद्ध करते हैं और किसी की अभिलाषा प्रतीक्षा की तंग गली में पड़ी नहीं रहती। **३–दिन दिन ईश्वर विश्वास वृद्धि**—प्रत्येक काम करने में, वास्तविक कार्यकर्ता ईश्वर को जानता है और इसी से कारणों के विरुद्ध होने पर भी व्यग्र नहीं होता। **४–ईश्वरोपासना**—कार्य की सफलता से असावधान नहीं होता और असफलता उसे भिक्षा वृत्ति के लिए व्यग्र नहीं करती। इच्छा की बाग डोर का सिरा बुद्धि के हाथ में रखता है और वासनाओं की चौड़ी सड़क पर उतावली से नहीं दौड़ता तथा अनावश्यक पदार्थों के उद्योग में अपना मूल्यवान समय नष्ट नहीं

---

१ अकबर सूर्य को ईश्वर का दृश्यमान प्रतिनिधि मानता था और इसी लिए उसकी उपासना करता था।

करता। वह, निरंकुश अन्ध-क्रोध को ज्ञान के अधीन रखता है और अन्ध-कोप को बलात् नहीं उठने देता तथा हलकेपन को अटकल से बाहर नहीं होने देता। वह मेल के शिखर पर विराजमान होता है। कुटिलों को सुमार्ग पर वापस लाने का साधन बनता है तथा उनकी निर्लज्जता का पट फटने नहीं देता है (अर्थात् उनके कुकर्म जनता के सम्मुख नहीं आने देता)। न्याय करने में वह अपने को ऐसा जाहिर करता है कि मानों वह स्वयम् तो प्रार्थी है और वादी ही, न्यायकारी है। इच्छुकों को प्रतीक्षा के पथ पर नहीं बिठलाता। सृष्टिकर्ता के आज्ञापालन में सृष्टि की समृद्धि चाहता है। लोगों को प्रसन्न करने के लिए बुद्धि के विरुद्ध आचरण नहीं करता। वह सदा सत्यवादियों की टोह में रहता है, और उनके कड़ुवे मालूम होने वाले बचनों से, जिनका फल मीठा हो, असन्तुष्ट नहीं होता। वक्ता की श्रेणी और उसकी सूक्ति कोटियों पर ध्यान रखता है। इसी पर सन्तोष नहीं करता कि स्वयं अत्याचार न करे, वरन् वह चाहता है कि उसके राज्य भर में कहीं अन्याय न हो।

वह सदा संसार-शरीर की स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान रखता है और उसके नाना प्रकार के रोगों का उपचार करता है। जैसे तत्वों के सम्मिश्रण से प्राणियों का प्राकृतिक-सामंजस्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वर्गों की तुल्यता से मनुष्यों के हृदयों में अनुकूलता उत्पन्न हो जाती है; और एक मनोवृत्ति तथा एक पक्षता के प्रकाश से बहुत से लोग एक देह हो जाते हैं।

संसार के मनुष्य चार वर्गों से अधिक नहीं होते:—१-**योद्धा**—ये संसार शरीर में अग्नि के तुल्य होते हैं। इस समूह की सकोप बुद्धि-ज्वाला से दुर्भागी उपद्रवियों की षड़यंत्र रचना का कूड़ा-करकट भस्म हो जाता है[१] और उपाधि-मय जगत में सुख का दीपक जलता है। २-**शिल्पकार तथा व्यापारी**—ये वायु के स्थान पर हैं। इस समुदाय की कार्य परायणता तथा पृथ्वी पर्यटन से सार्व-भौमिक ईश्वरीय प्रसाद उपलब्ध होता है और आनन्ददायिनी वायु जीवन के गुलाब-वृक्ष को बढ़ाती है। ३-**विद्वान**—जैसे दार्शनिक, वैद्य, गणितज्ञ, रेखागणित-विशारद और ज्योतिषी, ये जल के समान हैं। इस सचेत वृन्द की लेखनी और बुद्धि-सरिता से, संसार के दुर्भिक्ष काल में जल उमड़ आता है और सृष्टि-उद्यान को उसकी सिंचाई से विशेष शीतलता प्राप्त होती है।

१—यह विवरण "शाहनामा", "अख़लाक़े-मोहिसनी", "अख़लाक़े-जलाली" और "अख़लाक़े-नासिरी" में भी विद्यमान है।

४-कृषक और श्रमजीवी—यह वर्ग पृथ्वी के सदृश है। इन्हीं के उद्योग से जीवन की सामग्री पूरी होती है और इन्हीं के परिश्रम करने से बल और सुख प्राप्त होते हैं। अतएव शासक के लिए आवश्यक है कि वह इनमें से प्रत्येक को उपयुक्त स्थान पर लगाकर संसार को समृद्धशाली बनाने में दत्त-चित्त हो और प्रत्येक का उसकी कार्यपटुता के अनुसार सम्मान करे। इसका परिणाम यह होगा कि संसार की आपदाएं नष्ट हो जांयगी और सृष्टि का संयोग समता पर हो जायगा।

जैसे लोक शरीर मनुष्यों के चार वर्गों से समता—सौन्दर्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार राज्य की पवित्र मूर्ति भी चार प्रकार के श्रेणी भेद द्वारा, सुप्रबन्ध का उबटन अपने मुखमण्डल पर मलती है :—

१ राज्य के श्रीमन्त—जो अपने सामर्थ्य पर विश्वास करके प्रत्येक कार्य उत्तमता से संचालित करते हैं। रणस्थल को उत्सर्ग के सुकीर्ति-प्रदीप्तमण्डल से प्रकाशित करके प्राणाहुति देने से नहीं हिचकते। आतङ्क-पूर्ण राजसभा के ये भाग्यवान पुरुष अग्नि के स्थान पर हैं, हृदय-प्रकाशक भी और शत्रु-दाहक भी। इस वर्ग का अध्यक्ष **वकील** है, जो अपनी बुद्धि की प्रखरता से सद्भक्ति[१] के चार पदों पर पहुंच कर मुल्की और माली नायब होता है। पवित्र मन्त्रणा-सभाएं उसके ज्ञान के प्रकाश से प्रदीप्त होती हैं और राज्य के महान कार्य उसी की सूक्ष्म दृष्टि से दुरुस्ती पाते हैं। पद-वृद्धि, पदच्युत्ति, नियुक्ति और पृथकता उसके मतानुसार होते हैं। उसे ज्ञानवान, चिन्ताशील, उच्च-साहसी, पीठ पीछे भलाई कहने वाला, धीर, उदाराशय, मिलनसार, प्रफुल्लवदन, अपने और पराये के साथ एकसी वृत्ति रखने वाला, मित्र और शत्रु से सम व्यवहार करने वाला, तुली बात कहने वाला, समस्याएं सुलझाने वाला, सत्यवादी, प्रतिष्ठित, गंभीर, सम्मति लिए जाने योग्य, विश्वासपात्र, चतुर, दूरदर्शी, राज-काज विज्ञ, राज-रहस्य-ज्ञाता, काम न रोक रखने वाला, कार्य की अधिकता से न ऊबने वाला होना चाहिये। दूसरों के मनोरथ पूरे करने में एहसान अपने ऊपर रक्खे, और लोगों के पद-ज्ञान का ध्यान रख कर कार्य संचालन करे। सब से दिल मिलाने को प्रिय समझ कर अपने से छोटों का

---

१ अकबर कहा करता था कि पूर्ण सद्भक्ति (इख़लास) निम्नलिखित चार चीज़ों के त्याग पर निर्भर है—जान, माल, दीन और वैयक्तिकमान। जो अकबर को आध्यात्मिक बातों का भी पथ प्रदर्शक मानते थे, उनको उक्त सद्भक्ति प्रकट करने का बचन देना पड़ता था। उसके बाद वे दीन इलाही में सम्मिलित किये जाते थे।

सम्मान करे। अनुपयुक्त बातें न करे और कुकर्मों से अपने को बचाये। यद्यपि वह दफ़्तर का स्वामी नहीं होता तथापि दफ़्तरों के अध्यक्ष उससे सम्पर्क रखते हैं, और वह दूरदर्शिता से आवश्यक बातों की सूची अपने पास रख लेता है। **मीरमाल**[१], **मोहरदार**[२], **मीरबख़्शी**[३], **बारबेगी**[४], **क़ोरबेगी**[५], **मीरतुज़क**[६], **मीर बह्र**[७], **मीर बर्र**[८], **मीर मंज़िल**[९], **ख़्वान सालार**[१०], **मुंशी**[११], **क़ोशबेगी**[१२], **अख़्ता बेगी**[१३], इस वृन्द में सम्मिलित हैं। इनमें से हर एक को चाहिये कि दूसरे का काम जाने।

२ विजय के सहायक—धनादि संचय कर्ता तथा आय-व्यय विभाग के रक्षक—शासन-शरीर में वायु के सदृश हैं, चित्त पोषक मन्द वायु भी और प्राण-घातक लू भी। इस वर्ग का प्रधान **वज़ीर** होता है, इसे दीवान भी कहते हैं। वह सम्राट का माली नायब होता है। राजकोषों की रक्षा करना और हिसाब-किताब का प्रवन्ध रखना उसके कार्य हैं। लोग उसको राजकर के धन का सर्राफ़ और उजड़े हुये संसार का आबाद करने वाला समझते हैं। उसे ईश-सेवक[१४], उत्तम गणितज्ञ, निर्लोभी, सावधान, परम मित्र, संयमी, कार्य-साधक, कुशल निबंधकार, स्पष्ट लेखक, सत्यवादी, सत्यशील, शिष्ट एवं परिश्रमी होना चाहिये। वह आय-व्यय विभाग का प्रधान अधिकारी है। मुस्तौफ़ी (नायब दीवान) के कार्य में जो कठिनाई उपस्थित होती है, उसको दूरदर्शिता से दूर

---

१ सम्भवतः सम्राट् के जेब ख़र्च का हिसाब रखने वाला अधिकारी (ब्लाकमैन) परन्तु नवलकिशोर की मूल पुस्तक में 'दारोग़ाय ख़ज़ायन' अर्थात् कोषों का अध्यक्ष अर्थ है।

२ शाही मोहर रखने वाला।

३ वेतनाध्यक्ष।

४ जो दरबार में लोगों को सम्राट् के सम्मुख उपस्थित करे और उनकी अर्ज़ियां सुनावे इसे मीर अर्ज़ भी कहते हैं।

५ शाही अस्त्र-शस्त्रों और निशानों का प्रधान अधिकारी।

६ समस्त रीति रिवाजों और पर्वादि का अध्यक्ष। (ब्लाकमैन) शाही उत्सवों, दरबारों तथा लश्करों का प्रबंधक एवं सरदार (न० कि०)।

७ बंदरगाहों का अध्यक्ष।

८ शाही जंगलों का अध्यक्ष।

९ दरबार अथवा शयनागार का प्रधान प्रबन्धक।

१० भोजनालयाध्यक्ष।

११ बादशाह का मोहर्रिर।

१२ शिकार ख़ाने का दारोग़ा।

१३ अस्तबलों का प्रधान अधिकारी।

१४ दीन इलाही का सदस्य (ब्लाकमैन) मूल में "इलाहीबन्दा" पाठ है।

हो जाती है; और जो समस्या उससे भी नहीं सुलझती वह वकील के सामने हल होजाती है। **मुस्तौफ़ी**[१], **साहबे-तौजीह**[२], **अवारजा-नवीस**[३], **मीर सामान**[४], **नाज़िरे-ब्यूतात**[५], **दीवाने-ब्यूतात**[६], **मुशरिफ़े-गंजूर**[७], **वाक़या-नवीस**[८], **आमिले-ख़ालसा**[९] उसके अधीन हैं। ये सब अधिकारी वज़ीर के बुद्धिबलानुसार कार्य करते हैं। कुछ शासक वज़ारत को वकालत का एक अंग मानते हैं और राज्य मंदिर के इन दो स्तम्भों के कार्यों को ऐसे एक ही व्यक्ति से कराते हैं, जो दोनों विभागों के श्रेष्ठ कार्यों को जानता हो। कभी वकील के दुष्प्राप्य होने पर, एक ऐसे व्यक्ति को, जिसमें उसके (वकील के) गुण पाये जाँय, **मुशरिफ़े-दीवान** बनाते हैं। उसका पद दीवान से ऊँचा और वकील से नीचा होता है।

३ **संगी साथी**—जो अपने ज्ञान के प्रकाश, तीव्र-दृष्टि की आभा, काल-ज्ञान के सामर्थ्य, मानवीय प्रकृति की भीतरी परख की अधिकता, निष्कपटत्व और ओजस्वी भाषण से राज सभा को भूषित करते हैं; और अपने धार्मिक विश्वास तथा शुभ चिन्ता की विशेषता से राज्य के बाज़ार में सद्गुणों के सहस्रों भाण्डार खोल देते हैं। विशुद्धमत और यथार्थ विचार द्वारा, वे कलह पूर्ण जगत में तृष्णा का अवरोध करके क्रोध की चिनगारियों को, अपनी चतुराई की वर्षा से बुझा देते हैं। लोगों ने इस सौभाग्यवान वृन्द को राज्य-शरीर में जल का स्थान दिया है। जब ये लोग शुद्ध-हृदय होते हैं तो मनुष्यों के चित्त से वैर और कपट की धूल मिटा देते हैं, जिससे सभा-उद्यान नवीन और हरा-भरा होजाता है। परन्तु यदि ये समता की सीमा उल्लंघन कर जाते हैं तो संसार को आपत्तियों के प्रलय-प्रवाह में डुबो देते हैं, और सभी चराचर आपदाओं की बाढ़ से, विनाश की धारा में पड़ जाते हैं। इस वर्ग का अध्यक्ष हकीम[१०] है। जो अपने ज्ञान और कर्म की सहायता से अपने चरित्र की सभ्यता प्रदर्शित करके संसार के सुधार में कटिबद्ध

---

१ नायब दीवान, जो दफ़्तर का अध्यक्ष होता है।

२ सेना का हिसाब रखने वाला।

३ सम्राट का दैनिक व्यय-लेखक।

४ दरबार के सामान का अधिकारी।

५ शाही कारख़ानों का अध्यक्ष।

६ शाही कारख़ानों का हिसाब रखने वाला।

७ मोहर्रिर (ख़ज़ांची का)

८ घटनाओं का प्रधान लेखक।

९ ख़ालसा भूमि का प्रधान अधिकारी।

१० तत्ववेत्ता, दार्शनिक।

होता है। **सद्र**[१], **मीर अद्ल**[२], **क़ाज़ी**[३], **तबीब**[४], **मुनज्जिम**[५], **शायर**[६], **रम्माल**[७] और इसी प्रकार के लोग इस समुदाय में रहते हैं।

४—सेवक—जो राज दरबार में सम्राट् की सुश्रूषा के लिए आवश्यक होते हैं। संसार की राज-व्यवस्था में यह समुदाय पृथ्वी के स्थान पर है। ये लोग परिचर्या के राजमार्ग में पड़े रहते हैं और सम्राट् के निकटवर्ती-भयस्थान के तुच्छ रजःकण होते हैं। यदि ये छल छिद्र से रहित होते हैं तो शरीर के लिए पौष्टिक रस का काम देते हैं, अन्यथा मनोरथ के मुखमण्डल पर धूल हो जाते हैं। **ख़वास**[८], **क़ोरची**[९], **शरबत दार**[१०], **आबदार**[११], **तोशकची**[१२], **करकराक़**[१३] तथा ऐसे ही और लोग इस वर्ग की लड़ी में पिरोये हुये हैं। जब प्रारब्ध और सौभाग्य से ये सेवक गण आपस में मिल जाते हैं तो राज्य-उद्यान गुलदस्ता बन जाता है। राजा, जिस प्रकार लोक शरीर को श्रेणीबद्ध करके सुव्यवस्थित करे, उसी प्रकार राज्य-मूर्ति को भी इन चार वर्गों के सुधार द्वारा सुप्रबन्ध से सुशोभित करे।

प्राचीन काल के बुद्धिमान वर्ग ने शासन के चार मुख्य अधिकारियों का इस प्रकार उल्लेख किया है :—पहला कर्मशील **आमिल**[१४] जो कृषकों का रक्षक, प्रजा की चौकसी रखने वाला, देश की उन्नति करने वाला और कोष की पूंजी बढ़ाने वाला हो। दूसरा **तीमार दारे-सिपाह**[१५] जो बिना एहसान जताये काम पूरा करने वाला हो। तीसरा **मीरदाद**[१६] जो तृष्णा और स्वार्थपरता से रहित होकर सूक्ष्मदर्शिता और दूरदर्शिता के शिखर पर विराजमान हो, और केवल साक्षी और शपथ पर निर्भर न रह कर, तरह तरह की पूंछताछ करके लक्ष पर पहुँच जाय।

१—इसे सद्र-इ-जहां भी कहते हैं। प्रधान विचार-पति तथा प्रधान-शासक।

२—३ काज़ी न्याय करता है और मीर-अद्ल सज़ा का हुक्म देता है।

४—वैद्य।

५—गणित ज्योतिष का विद्वान।

६—कवि।

७—फलित ज्योतिषी।

८—सम्राट को भोजन कराने वाला।

९—रक्षा वर्ग का शस्त्रधारी प्रधान सेवक।

१०—११ शरबत और पानी के प्रधान सेवक।

१२—१३ वस्त्रालय और बिछोने के प्रधान सेवक।

१४—कलेक्टर और मजिस्ट्रेट।

१५—सेना की रक्षा करने वाला, सेनापति।

१६—न्यायाधीश।

चौथा **जासूस**[1] जो वर्तमान समय की घटनाओं के संवाद, बिना घटाये बढ़ाये पहुँचा दे और सत्यता एवं दूरदर्शिता के गुण को हाथ से न छोड़े।

न्यायी राजा के लिए आवश्यक है कि वह मानव-परीक्षा के आसन पर बैठे, और पांच प्रकार के मनुष्यों को—जिनमें संसार के सब मनुष्य आजाते हैं—पहचान लेवे और फिर बुद्धि के अनुसार व्यवहार करे। १-सर्व श्रेष्ठ वह **बुद्धिमान मनुष्य** है जो समय की परम आवश्यक उपयोगिताओं को अपने ज्ञान से काम में लावे, और जिसके सद्‌गुणों का सोता केवल उसी की गली में घुसा न रह कर दूसरों की खेती बारी को भी हराभरा बनाये। केवल ऐसा शुद्ध व्यक्ति सम्राट् को परामर्श देने और राज्य संभालने के योग्य है। २-इसके बाद **शुभ चिन्तक** है, जिसके सत्कर्मों की सरिता उसकी गली से बाहर न जाय और दूसरों के जल-प्रदान का साधन न बने। यद्यपि ऐसा व्यक्ति दया और प्रतिष्ठा के योग्य है, परन्तु विश्वास पात्रता जैसे उच्च पद का अधिकारी नहीं है। इसमे निकृष्ट **भोला भाला** है, जिसकी कर्म-भुजा पर भलाई के चिह्न नहीं होते, पर बुराई तथा बुरे कर्मों की धूल से भी जिसका अंचल सौंदा नहीं होता। यद्यपि वह मान पाने योग्य नहीं है, तथापि सुख की छाया में बैठने का अधिकारी है। ४-इस से निकृष्टतर **सुषुप्त-भाग्य** है, जिसके घर में विनाश की सामग्री के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, किन्तु जनता उसके कष्ट से मुक्त होती है। समय का शासक, उसको निराशा के तप्त स्थान में रखकर, श्रेष्ठ उपदेशों, ग्लानि पूर्ण धिक्कारों तथा उचित ताड़नाओं द्वारा सतपथानुगामी बनावे। ५-**अधमाधम** वह दुष्टप्रकृति है, जिसके पाप कर्म दूसरों के पापों को बढ़ाने वाले हैं, और जिसकी दुष्टता से सम्पूर्ण जगत दुःख में हो। यदि पूर्व रोगियों का उपचार दुष्ट-प्रकृति के लिए हितकर सिद्ध न हो, तो राजा उसको कोढ़ियों के समान पृथक् रखकर नागरिकों से उसे मिलने न दे। यदि इस हृदय विदारक दंड से उसकी घोर अज्ञान निद्रा भङ्ग न हो, तो उसको शोक के शिकंजे में कसकर घर से बाहर निकाल दे। यदि उसके नष्ट स्वभाव के लिए यह औषधि भी लाभदायक सिद्ध न हो, तो राजा उसको राज्य से बाहर कर दे और निराशा-वन में भटकने दे। यदि यह उपाय भी उसकी पापमय प्रकृति को लाभ न पहुँचावे, तो उसकी दुष्टता के साधनों—नेत्रों से दृष्टि और हाथ पैर से बल खींचले (अर्थात् अन्धा करदे या

१—भेदिया।

हाथ पांव काट दे)। परन्तु राजा को चाहिये कि उसके जीवन का ताना बाना तोड़ने (प्राण लेने) का साहस न करे ; क्योंकि बुद्धिमान मनोविज्ञानियों ने मानव शरीर को ईश्वरीय मन्दिर समझ कर उसको नष्ट करने की आज्ञा नहीं दी है।

अतएव न्यायप्रिय राजा के लिए आवश्यक है, कि अपने अनुभव और सूक्ष्म दृष्टि के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर, कार्य संचालन करे। और इसी लिए प्राचीन काल के ज्ञानार्जकों ने कहा है कि अग्रशोची, तेजपुञ्ज शासक हर छोटे आदमी को नौकर नहीं रखते; और जिनको इस काम के लिए स्वीकार कर लेते हैं, उन नौकरों में से हर एक को नित्य प्रति सामने आने का अधिकारी नहीं समझते ; जिनको सामने आने की आज्ञा होती है, उनमें से हर एक को अपने बिछौने के पास आने के योग्य नहीं जानते। निकट जाने के अधिकारी व्यक्तियों में से हर एक आमोद-प्रमोद सभा में पदार्पण नहीं करने पाता। उपरोक्त श्रेणी का प्रत्येक पदस्थ (आमोद-प्रमोद सभा में जाने वाला) प्रतिष्ठित सभा में प्रवेश के योग्य नहीं होता। जो व्यक्ति इस सौभाग्य द्युति से प्रकाश प्राप्त करते हैं (महती सभा में जा सकते हैं) उनमें से हर एक गुप्त-समिति में नहीं जा सकता ; और इस विज्ञता-समिति का प्रत्येक सौभाग्यवान व्यक्ति, राजकीय विषयों पर विचार करने वाली गुप्त राष्ट्रपरिषद में स्थान नहीं पाता।

ईश्वर को धन्यवाद है, कि हमारे समय का सम्राट् उपरोक्त उत्तम गुणों से ऐसा अलंकृत है, कि यदि उनको इन सब का सर-इ-दफ़्तर कहें तो अत्युक्ति न होगी। वह अपने ज्ञान के प्रकाश से, मनुष्यों के पद पहचान कर उनके पुरुषार्थ का दीपक जलाता है, और बिना किसी प्रकार की कठिनाई के प्रसन्न वदन अपने ज्ञान को कर्म-सौन्दर्य से विभूषित करता है। किसकी सामर्थ्य है कि वाक्शक्ति की गुनियां[1] से, उसके आध्यात्म जगत की अग्रगण्यता[2] एवं पवित्र—विस्तीर्ण मार्ग की कार्य पटुता का अनुमान कर सके ; और यदि कुछ हाल वर्णन किया जाय और कोई भेद दर्शाया जाय तो श्रोता सुनने का बल कहाँ से लाये और समझने की शक्ति किससे मांगे। तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मैं इस प्रयत्न से अपने को हटा लूं और उसके वाह्य जगत की कुछ विलक्षणताएं चित्रित करने पर सन्तोष करूं। अतः मैं उसके **शाला विभाग** की नीति, **सेना विभाग**

---

१ बढ़ई का एक ख़ास औज़ार जिससे वे लकड़ी की ठीक २ नाप करते हैं।

२ अकबर दीन इलाही मत का प्रवर्त्तक था। उसने अनुयायियों को जो चमत्कार दिखलाये थे, उनमें से कुछ का उल्लेख इस ग्रंथ के ७७ वें आईन में है।

के नियम और **साम्राज्य विभाग** की व्यवस्था—क्योंकि राज्य के कारख़ाने की सभी बातें इन्हीं तीन विभागों के अन्तर्गत हैं—वर्णन करता हूँ; और कर्मण्य अन्वेपकों के लिए एक भेंट तैयार करता हूँ; जिसका प्रत्येक क्लिष्ट मालूम होने वाला अंश सरल, और आसान मालूम होने वाला भाग कठिन है।

अनुभवी कार्यशील एवं प्राचीनकाल के इतिहासज्ञ इस चिंता में हैं कि पूर्वकालीन शासकों ने, बिना इन सुबोध विधानों के, राज-कार्य को कैसे सुव्य-वस्थित किया और राज्य-उपवन बिना इस ज्ञान-स्रोत की सिंचाई के कैसे हरा भरा रहा। इन्हीं कारणों से यह उत्कृष्ट ग्रन्थ तीन प्रकार की नीतियों से परिष्कृत किया गया, और मेरे साथ जो उपकार किये गये हैं उनके लिए इस पुस्तक के द्वारा कुछ कृतज्ञता प्रकट की गई है।

लोगों[१] की जानकारी के लिए कुछ हिन्दी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उनके उच्चारण की सुविधा के लिए मात्राएं लिखदी हैं। इससे अन्वेपी कष्ट न उठायेंगे और शुद्धोच्चारण में गड़बड़ी भी न होगी। अलिफ़, लाम और इसी प्रकार के अन्य वर्णों के नाम लिख कर भ्रम का मोर्चा घिस दिया है। कुछ को मनक़ूता (बिन्दु वाला) लिख कर स्पष्ट कर दिया है। समाकृति वर्णों को सामान्य रीति से बयान किया है। वे अक्षर जो केवल फ़ारसी भापा के थे, फ़ारसी शब्द से आबद्ध करके न्यारे कर दिये, जैसे पदीद शब्द की बे, चमन की जीम, निगार की काफ़ और मुज़्हदा की ज़्हे। कभी उच्चार्यमाण अक्षर पर, तीन बिन्दु लगाकर भेद प्रगट कर दिया है। जो वर्ण फ़ारसी भाषा में नहीं हैं, उनको हिन्दी अक्षर कह कर सन्देह दूर कर दिया। ऐसे अक्षरों का अन्तर, जैसे रूए में इये और दस्त में ते हैं क्रमशः तहतानी और फ़ौक़ानी लिखकर प्रकट कर दिया है। अदब की बे का प्रयोग प्रायः स्पष्ट होता है, अतएव मैंने उसे केवल बे लिखा है। नून, वाव, याय तहतानी, और हे में से प्रत्येक वर्ण को, जो जहां पर जिह्वा से योंही स्पष्ट उच्चारित हुये हैं, बिना किसी बन्धन के लिखा है। नून, जो नाक के सहारे बोली जाती है—जैसे जां की नून—नून-इ-ख़फ़ी या नून-इ-पिनहां कह कर भिन्नता प्रकट करदी है। कुछ अक्षर ऐसे हैं, जो लिखे जाते हैं, पर बोले नहीं जाते—जैसे फ़रखुन्दा

---

१ यह पैरा केवल फ़ारसी भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी है। मूल ग्रन्थ में प्रायः अनेक शब्दों को इस पैरे में बतलाए हुये नियमों से स्पष्ट किया गया है।

अनुवादक।

को है—उनको मकतूबी बयान किया है। पेश और ज़ेर, जिनका भेद अप्रकट है, मभूल शब्द से आबद्ध करके उच्चारण स्पष्ट कर दिया है। अलिफ के पूर्व वर्ण में ज़बर अवश्य होता है और मख़फ़ी भी साकिन होता है, इस लिए उसे किसी मात्रा से आबद्ध नहीं किया है।
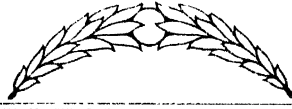
प्रथम ग्रन्थ

राजकीयशालाओं का वर्णन ।

प्रथम ग्रन्थ।

राजकीयशालाओं का वर्णन।

आईन[1] १

राजकीयशाला।

उच्च विचारशील और महत्वाकांक्षी वह व्यक्ति है, जो सृष्टि के सभी परमाणुओं को, बिना किसी को विशेषता दिये, ईश्वरीय शक्ति की विचित्रता के आविर्भाव का स्थान जाने, और तदनुसार ही अपना भीतरी और बाहरी आचरण बनाये तथा बुद्धिमानी से अपने और परायों का समुचित सम्मान करे। यदि उसको ये गुण प्राप्त न हों, तो उसके लिए आवश्यक है कि वह संसार के लड़ाई झगड़ों में न पड़े और शान्ति-पथ ग्रहण करे। यदि वह विरक्त हो तो निज को श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत करे; और यदि गृहस्थों में से हो तो उसके प्रबन्ध में आसक्तों की तरह दत्तचित्त हो और निर्लिप्त-भाव से जीवन-निर्वाह करे।

प्रतिष्ठा, चाहे आध्यात्मिक हो अथवा लौकिक, छोटे-बड़े कार्यों को करने से नहीं रोकती; वरन् उनके करने को वह विश्वनिर्माता न्यायकारी की श्रेष्ठ उपासना समझती है[2]। यदि वह स्वयम् अपने सब काम न कर सके, तो उसको चाहिये कि तीव्र सूक्ष्म दृष्टि और यथार्थ अनुभव द्वारा एक दो ऐसे मनुष्यों को

१—मूल-ग्रन्थ में "आईने-मंज़िल आबादी" पाठ है, जिसका अर्थ राजकीय शालासमृद्धि का "आईन", होता है। पाठकों की सुविधा के लिए, ब्लाकमैन के (अनुवाद के) अनुसार आईनों का वर्गीकरण संख्या-क्रम से किया गया है, और "आईने-मंज़िल आबादी" का भावार्थ दो भिन्न शीर्षकों द्वारा प्रकट किया गया है।

२—अकबर इस वाक्य को बहुधा कहा करता था।

चुन ले, जो चतुर, बुद्धिमान, धार्मिक और साम्प्रदायिक एवं जातिगत मामलों में निष्पक्ष, हृदय-पारखी तथा उद्योगी हों, और उनकी निगरानी पर काम छोड़ दे।

जो शासक बड़े कार्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता, बुद्धिमान उसकी गणना राजाओं में नहीं करते। यद्यपि कुछ निष्पक्ष न्यायाधीश, सांसारिक माया से कीले हुये ऐसे शासक को, ऐसे काम करने पर, क्षम्य मानते हैं; क्योंकि अधिकतर अर्थ-लोलुप चाटुकार—जो धूर्तता से अपने को सज्जनों में शामिल कर लेते हैं—पद-भेद की बातें बनाते हैं,[१] और वाह्य आडम्बर के प्रेमी शासकों को (प्रमाद निद्रा में) सुला देते हैं; उनकी केवल यही आकांक्षा रहती है कि स्वयम् लेन-देन की दूकान सजालें और अपना घर भरलें। भाग्यवान शासक छोटे और बड़े मामलों में भेद नहीं मानते; वे ईश्वरानुमोदित सहायता से लोक परलोक का भार अपने साहस के कन्धे पर रखते हैं और निश्चिन्त और निर्लिप्त रहते हैं, जैसा कि हाल हमारे समय के बादशाह का है। वह अपनी ज्ञान विचक्षणता से शालाओं (कारखानों) की समृद्धि में—जो कि लोक रक्षा की पहली सीढ़ी है, और जिन पर अगले शासक[२] अपने बड़प्पन के कारण बहुत कम ध्यान देते थे—चित्त लगाता है, और प्रत्येक स्थान के लिए उपयुक्त नियम निर्धारित करता है। और अपने इस कर्तव्य-पालन को अद्वैत न्यायकारी के कृपा-भाजन होने का साधन समझता है।

इस अद्भुत कार्य की सफलता दो बातों पर निर्भर है:—प्रथम, ज्ञान और सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा, लोकोपकारी राज-आज्ञाओं को पवित्र हृदय मन्दिर से तैयार करके अस्तित्व-सभा में लाना; दूसरे, सत्प्रकृति और प्रयत्नशील व्यक्तियों को उन्हें सौंपकर उनके कार्यान्वित होने का ध्यान रखना।

यद्यपि शालाओं के बहुत से कर्मचारी सेना-विभाग में वेतन पाते हैं

१—अर्थात् कहते हैं कि यह कार्य छोटा है, राजा के करने योग्य नहीं।

२—हिन्दुओं के इस समय तक के प्राप्त इतिहास में, जिन राजाओं ने शाला-विभाग पर अत्यधिक ध्यान दिया और उस को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, उनमें *सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आज से लगभग २५०० वर्ष* पूर्व उसके शासन-विधान "कौटिल्य का अर्थ शास्त्र" को देखकर आश्चर्य होता है। मेगस्थनीज़ के साक्ष्य से भी इस बात की पुष्टि होती है। इतिहासकार विन्सेण्ट-स्मिथ ने मौर्य-शासन की प्रशंसा करते हुये उसके सुसंगठित होने का सारा श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके मंत्री चाणक्य को ही दिया है।

तथापि सन् ३९ इलाही[१] में इस (शाला) विभाग का व्यय तीस करोड़ इक्यानवे लाख, छियासी हज़ार सात सौ पञ्चानवे दाम[२] था। इस राज्य का व्यय उसकी आय के अनुसार नित्य प्रति बढ़ता जाता है। सौ से अधिक कारख़ाने हैं, और उनमें से हर एक कार्यालय बड़े नगर के सदृश तो क्या, एक देश के समान है। सम्राट् के निरन्तर ध्यान देने से उनमें बढ़िया सामान रहता है और सदा बढ़ता रहता है। सौभाग्य और ग्रहों के प्रताप से जितनी जितनी सम्पत्ति बढ़ती जाती है, वात्सल्य और दयालुता की भी उतनी ही उतनी वृद्धि होती जाती है।

कुछ व्यवस्थाओं को भावी सत्यान्वेषियों के लिए, उपहार के तौर पर, निर्मित करता हूँ और इस प्रकार दूसरों में अपने ज्ञान और कर्म का दीपक जलाता हूँ। कुछ व्यवस्थाएं जो सामान्य प्रकार की हैं और विधान के तीनों विषयों[३] में सम्मिलित होने के योग्य हैं—मैंने उनका उल्लेख शालाओं के वर्णन में ही किया है।

आईन २।

राज कोष।

प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान जानता है, कि समय की आपदाओं का हटाना और जनता के कष्टों का दूर करना, ईश्वर की सर्व श्रेष्ठ उपासना और सर्वोत्तम आराधना[४] है। ये दोनों बातें कृषी की उन्नति, राज-कार्यालयों की परिपूर्णता,

१—अकबर ने जो सन् इलाही (सौर-सम्वत्) चलाया था उसका आरम्भ १५ फ़रवरी सन् १५५६ ई० से होता है। इसके अनुसार सन् ३९ इलाही में ईसवी सन् १५९५ था।

२—अकबरी रुपया ४० दाम में चलता था। इस हिसाब से ३०,९१,८६,७९५ दाम, ७७२९६६९ ७/८ रुपये के बराबर होते हैं। आजकल के हिसाब से अकबरी रुपया=२ शिलिङ्ग ३ पेंस अंगरेज़ी=१॥।-) हिन्दुस्तानी के होता है। विनिमय की कमी बेशी के कारण रुपए की दर में भी कमी बेशी होती रहती है।

३—सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन विषयों में विभाजित है, यथा १—शालाओं का वर्णन, २—सैन्य विभाग का वर्णन और ३—साम्राज्यशासन का वर्णन।

४—श्रीमद्भागवत् में भी कहा है कि सज्जन पुरुष संसार के कष्टों को दूर करने के लिए स्वयं कष्ट सहते हैं, अर्थात् स्वयं दुःख उठाकर लोकहित का साधन करते हैं। क्योंकि यह विश्वात्मा की सर्वोत्कृष्ट आराधना है। यथा—

तप्यन्ते लोक तापेन, प्रायशः साधवोजनाः।
परमाराधनं तद्धिः, पुरुषस्याखिलात्मनः॥

(श्रीमद्भागवत स्क० ८)

राज्य के प्रयत्नवान महारथियों की तत्परता और सेना की शुभ कार्यपरायणता पर निर्भर हैं। और उपरोक्त चारों बातें राजा के यथार्थ-विचार, जनता के पालन-पोषण, उत्तम धन के संचय और अन्तःकरण के आज्ञानुसार व्यय करने पर अवलम्बित हैं। इससे नागरिकों और ग्रामीणों के लिए जो बातें होनी चाहिये वे प्राप्त होती हैं, और उक्त दोनों समुदायों की सभ्यता और संस्कृति की पूर्ति होती है। अतएव न्यायी शासकों के लिए अनिवार्य है कि पहिली चीजों का संग्रह करें और पिछले समुदायों की रक्षा करें। कुछ लोग, जिस प्रकार विरक्त त्यागियों के लिए धन संचय करना एवं उसकी अधिकता की चिन्ता करना घृणित मानते हैं, उसी प्रकार वे, उनके विरुद्ध गृहस्थों के लिए उसका एकत्र करना आवश्यक समझते हैं। पर यह प्रलाप केवल वाह्यदर्शक अदूरदर्शियों का है, क्योंकि (विरक्त और गृहस्थ) दोनों ही, समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दौड़-धूप करते हैं। दीन सन्तोषी, अपने भोजन वस्त्र के लिए इतनी पूंजी चाहते हैं, जिसमें उनको ज्ञान-चिन्तन में बल मिल सके और शीतोष्ण से बचाव हो सके। दूसरे समुदाय का अलम् इस बात पर होता है कि कोष को धन से भरे, ऐश्वर्य की सामग्री एकत्र करे तथा अन्य कार्य सोचे।

उपरोक्त विचार से, जिस समय सम्राट् के ज्ञान चक्षु खुले और उसने गुरुतर कार्यों के सुप्रबन्ध में कुछ ध्यान देना आरम्भ किया, तो ख्वाजासरा[1] एतमाद खां को परामर्श के योग्य समझ कर अपने हृदय का भेद बतलाया। उसके अनुभव-द्वारा सम्राट् की कुछ पवित्र हार्दिक इच्छा कार्य रूप में परिणित हुई, फिर उसमें क्रमशः उन्नति होती गई, और उसके उत्तम साधन उपस्थित होते गये। हर प्रकार की भूमि के कर की जांच की गई, और सत्प्रकृति अनुभवी व्यक्तियों द्वारा वह पड़ताल सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

१—ख्वाजासरा, रनिवास के प्रधान *नपुंसक दास को कहते हैं। एतमाद शब्द का* अर्थ विश्वास और भरोसा है। अगले समय में, रनिवासों में ऐसे दासों के रखने का चलन था। एतमाद खां का असली नाम फ़ूलमलिक था। सलीम शाह (१५४५-१५५३) की सेवा के उपलक्ष में उसको मुहम्मद खां कि उपाधि मिली थी। उसके बाद वह अकबर की सुश्रूषा में लगा। जब अकबर के पालक-पिता शमशुद्दीन मुहम्मद अतगा खां का देहान्त होगया, तो उसने *(अकबर ने) अर्थ-विभाग पर ध्यान देना* आरम्भ किया। जब उसे मालूम हुआ कि माल का मोहकमा चोर-घर बन गया है, तो उसने फ़ूल मलिक को उसकी निगरानी के लिए नियत किया और एतमाद खां की पदवी प्रदान की। इसके विशेष विवरण के लिए द्वितीय ग्रन्थ में मंसबदारों की सूची में नं० ११९ देखिए।

ऐसी मार्मिकता के साथ– वह भूमि जिसमें अपने और पराये का अन्तर नहीं था—उसने खालसा की जमीन से जागीर की जमीन पृथक करदी। एक एक करोड़ दाम की मालगुजारी के लिए उसने एक एक परिश्रमी सत्यनिष्ठ अधिकारी नियत किया, और सहायता के लिए निर्लोभी बितक्ची (मोहर्रिर) साथ कर दिया तथा हर एक के लिए एक ईमानदार खजांची मुकर्रर किया। दयालुता और कृपकों की रक्षा के ख्याल से, सम्राट् ने अधिकारियों को आज्ञा दी कि वे किसानों को जरे-खालिस (पूरी तौल के सिक्के) अदा करने के लिए बाध्य न करें और जो कुछ भी वे दें उसके लिए मोहर लगा कर रसीद दे दें। इस उत्तम व्यवस्था द्वारा उसने अधिकारियों के भ्रम का मोरचा घिस दिया, और प्रजा ने नाना प्रकार के अत्याचारों से छुटकारा पाया। सम्पदा बढ़ गई और राज्य समृद्ध हो गया। जब माल (अर्थ) का प्रधान सोता साफ हो गया तो एक ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति प्रधान कोषाध्यक्ष के पद के लिये चुना गया, और एक दारोगा तथा एक मुहर्रिर उसकी सहायता के लिए नियत किये गये। दूरदर्शिता कार्य रूप में परिणित हुई और कार्य-संचालन के लिए नियम निर्धारित हुए। जैसे, जब प्रत्येक प्रान्तीय कोषाध्यक्ष के पास दो लाख दाम (५००० रु०) जमा हो जांय, तो राज दरबार में लाकर उस (प्रधान कोषाध्यक्ष) को सौंप दें, साथ ही धन के ब्योरे की सूची भी साथ लावें। **पेशकश**[1] जमा करने के लिए एक अलग खजांची नियुक्त किया गया। लावारिसी माल (उत्तराधिकारी रहित-सम्पत्ति) के लिए एक और कोषाधीश नियत किया। **नज़्र** में आये हुए धन के लिए भी एक निपुण व्यक्ति रक्खा गया। तुलादान एवं दान पुण्य के रुपये देने के लिए एक और शुभ चिन्तक नियुक्त किया। अनेक प्रकार के व्यय के लिए उत्तम नियम बना दिये, और सत्यशील कार्याध्यक्ष, योग्य दारोगे, ठीक लिखने वाले बितकूची पृथक पृथक नियत किये। वार्षिक-व्यय का रुपया, जमा का

१—पेशकश का तात्पर्य उस नियत भेंट के धन से है, जो राज्य की अधीनस्थ जागीरें आदि, सम्राट् को अदा करती थीं। भारतवर्ष में इसी तथा ऐसे ही और अनेक नामों से बहुत दिनों तक कर वसूल किया जाता रहा है, यथाः—राज हक़, ज़ोर तलबी, सार्वदेश मुखी, खिचड़ी, कुदनी, घास दाना, **पेशकश, और ख़िराज आदि। आजकल** इनमें से कई राजकर बन्द हैं। देशी रियासतें जो कर भारत सरकार को देती हैं वह ख़िराज कहलाता है। पेशकश के नाम से अब भी कई राज्यों में कर लिया जाता है। जूनागढ़ राज्य को कई अधीनस्थ छोटे राज्य ज़ोर तलबी नामक कर देते हैं। गुजरात में एक दो राज्यों से अब भी खिचड़ी के नाम से कर लिया जाता है।

ख़ज़ांची (प्रधान कोषाध्यक्ष) प्रत्येक ख़र्च के खज़ांची को देता है और ठीक लिखा पढ़ी करके रसीदें आदि ले लेता है। हिसाब लिखने का तरीक़ा आसान होगया और राज्योद्यान हरा भरा हो गया। थोड़े ही समय में ख़ज़ाने भर गये, सेनाएं बढ़ गईं और कुटिल राजद्रोही आज्ञा-पथ के अनुगामी हो गये।

ईरान और तूरान में केवल एक ख़ज़ांची रहता है, इस से हिसाब-किताब में बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु यहां माल और कार्य की अधिकता के कारण उपार्जित-द्रव्य के निरीक्षण के लिए बारह कोषाध्यक्ष नियत किये गये हैं; जिनमें से नौ तरह तरह की नगदी के लिए हैं, और तीन मणि मुक्ता, सोना और जड़ाऊ सामान जमा करते हैं। कोषों का परिमाण इससे कहीं अधिक है कि इस वृत्तान्त के साथ उसका भी उल्लेख किया जा सके। सम्राट्, अपनी गुण-ग्राहकता से, कार्यों के उपलक्ष में लोगों पर कृपा करता अथवा धिक्कारता है; इस लिए काम-काज में चहल पहल रहती है।

हर कारख़ाने के लिए एक अलाहिदा ख़ज़ांची नियत किया गया, और उनकी संख्या सौ के लगभग हो गई है। सावधान कार्य-अभिज्ञ, दिन दिन, मास मास, फ़स्ल फ़स्ल और साल साल के लेन-देन का हिसाब दुरुस्त रखते हैं; जिस से संसार का बाज़ार गर्म रहता है।

पुनः सम्राट् की आज्ञा से, सौभाग्यवान सत्यशील कर्मचारियों में से एक व्यक्ति, दरबार-आम में, सदा रुपये और मोहरें तैयार रखता है, जिस से बहुधा अभिलाषी प्रतीक्षा का बिना कष्ट उठाये सफल मनोरथ हो जाते हैं। एक करोड़ दाम राजभवन के आंगन में प्रस्तुत रहता है। एक एक हज़ार दाम टाट की थैलियों में भर जाते हैं; ऐसी हर थैली को **सहसा** कहते हैं। इन थैलियों का ढेर **गंज** कहलाता है। इसके अतिरिक्त सम्राट् बहुतसा रुपया अपने ख़ासों[1] को सौंप देता है, जो समय कुसमय के लिए तैयार रहता है, और कुछ लोग **बहले** (थैली) में रखकर हाथ में लिए रहते हैं, इस कारण प्रचलित भाषा में उसको **ख़र्च-बहला** कहते हैं।

ये समस्त कृपाएं, सम्राट् की अद्भुत उदारता और हर प्रकार से अपनी प्रजा को पालन करने के कारण से हैं। परमात्मा करे, वह हज़ार वर्ष जिये।

---

१ प्रतिष्ठा प्राप्त सम्राट् के ख़ास आदमी।

आईन ३।

रत्नकोष।

वह कितना है और कैसा है—यदि मैं यह वर्णन करने लगूं, तो बहुत समय लगेगा। अतः उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा हाल लिखकर ज्ञान का बाजार सजाता हूँ और हर खलिहान से एक बाली उठाता हूँ।

सम्राट् ने इस विभाग के लिए एक बुद्धिमान, सन्तोषी और कार्यपरायण कोषाध्यक्ष नियत किया। और उसकी सहायता के लिए एक सद्प्रकृति एवं कार्यपटु बितकुची, एक भाग्यवान और परिश्रमी दारोगा और कई चतुर जौहरी मुक़र्रर किये। उसने इन्हीं चार स्तम्भों के आधार पर इस बड़े कारख़ाने की बुनियाद रखी। इन्होंने हर कोटि के रत्नों को श्रेणी-बद्ध करके सन्देह का मल साफ़ कर दिया।

लाल—जिस लाल का मूल्य १००० मोहर से कम नहीं होता पहली श्रेणी में रखा जाता है; ९९९ से ५०० मोहर तक का दूसरी में; ४९९ से ३०० तक का तीसरी में; २९९ से २०० तक का चौथी में; १९९ से १०० तक का पाँचवीं में; ९९ से ६० तक का छठी में; ५९ से ४० तक का सातवीं में; ३९ से ३० तक का आठवीं में; २९ से १० तक का नवीं में; ९ ३/४ से ५ तक का दसवीं में; ४ ३/४ से १ तक का ग्यारहवीं में; ३/४ मोहर से १/४ रुपए तक का बारहवीं में। लाल के इस से अधिक दर्जे नहीं रखे हैं।

हीरा[१]—पन्ना और लाल-नीले याक़ूत निम्नलिखित रीति से क्रमान्वित होते हैं:—पहली श्रेणी—३० मोहर से अधिक मूल्यवान; दूसरी श्रेणी—२९ ३/४ मोहर से १५ मोहर तक; तीसरी श्रेणी—१४ ३/४ से १२ तक; चौथी श्रेणी—११ ३/४

१—कोहनूर—अकबर के रत्न-कोष में जगत् प्रसिद्ध कोहनूर हीरे का साफ़ साफ़ पता नहीं चलता। यह उस समय किसी और नाम से पुकारा जाता होगा। इसके इतिहास के सम्बन्ध में लोगों के विभिन्न मत हैं। कोई कोई सज्जन तो इसे मूसली-पट्टम में गोदावरी के तट पर मिला हुआ बतलाते हैं और कहते हैं कि यह अंगराज कर्ण के पास था। किसी किसी का कहना है कि श्रीकृष्ण का कौस्तुभ मणि यही है और चलते चलते उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के पास पहुँचा। ('विश्व कोश' तथा शब्द सागर,) जो भी हो, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे विलक्षण मणियों का उल्लेख मिलता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें से कोहनूर का किस से सम्बन्ध है।

कोहनूर का पता बाबर के समय से चलता है, उसने अपने आत्म-चरित में

से १० मोहर तक; पाँचवीं श्रेणी—६$\frac{3}{4}$ से ७ मोहर तक; छठी श्रेणी—६$\frac{3}{4}$ से ५ मोहर तक; सातवीं श्रेणी—४$\frac{3}{4}$ से ३ मोहर तक; आठवीं श्रेणी—२$\frac{3}{4}$ से २ मोहर तक; नवीं श्रेणी—१$\frac{3}{4}$ से १ मोहर तक; दसवीं श्रेणी—८$\frac{3}{4}$ रुपए से ५ रुपए तक; ग्यारहवीं श्रेणी—४$\frac{3}{4}$ रुपए से २ रुपए तक; बारहवीं श्रेणी—१$\frac{3}{4}$ रुपए से $\frac{1}{4}$ रुपए तक।

इसका दो स्थानों पर उल्लेख किया है। एक तो, जब हुमायूं बीमार पड़ा था तब ख्वाजा खलीफ़ा तथा उसके अन्य मित्रों ने उस (हुमायूं) के स्वास्थ्य लाभ के लिए बाबर से कहा था कि अपने पास की संसार की सबसे अमूल्य वस्तु उस हीरे को—जोकि उसको इब्राहीम की पराजय के बाद मिला था और जिसको उसने हुमायूं को देदिया था,—दान करदे। (Memoirs of Zahiruddin Mohammad Baber, 1925, Vol II Appendix D, Page 442). दूसरे ४ मई १५२६ ई० के घटना-क्रम में बाबर लिखता है:—"बिकरमाजीत—एक हिन्दू राजा—जोकि ग्वालियर का राजा था और सौ वर्ष से भी अधिक पहले से उस देश पर (उसका बंश) शासन करता था। ··············जिस युद्ध में इब्राहीम पराजित किया गया था उसी में बिकरमाजीत भी जहन्नुम को पहुँचाया गया था। बिकरमाजीत का परिवार तथा वंश के मुख्य मुख्य मनुष्य उस समय आगरे में थे। जब हुमायूं पहुँचा तो बिक्रमाजीत के आदमियों ने भागने की चेष्टा की, किन्तु उन दलों ने जिनको कि हुमायूं ने उक्त परिवार की चौकसी के लिए तैनात किया था,—गिरफ़्तार कर लिया और हिरासत में ले लिया। हुमायूं ने उनको लूटने खसोटने नहीं दिया। उन्होंने स्वेच्छा से हुमायूं को एक पेशकश भेंट की। जिसमें जवाहरात और बहुमूल्य पत्थर थे। उनमें वह प्रसिद्ध हीरा भी था जो सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा प्राप्त किया गया था। यह इतना मूल्यवान है कि एक रत्न-पारखी ने उसका मूल्य संसार भर का आधे दिन का व्यय लगाया। यह तोल में लगभग ८ मिसक़ाल है। जब मैं आया तो हुमायूं ने मुझे उसको पेशकश के तौर पर भेंट किया, किन्तु मैंने उसको पुरस्कार के रूप में देदिया।" (Memoirs of Baber, Vol II. P. 193).

अब प्रश्न है कि ग्यालियर राज विक्रमादित्य को अलाउद्दीन (१२९६-१३१६) से कैसे मिला? "राजपूताना का इतिहास" (जिल्द पहली पृष्ठ २३५, ले० म. म. राय बहादुर पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा) देखने से मालूम होता है:—"दिल्ली की तंवरों के वंशजों की दूसरी शाखा के तंवर वीरसिंह ने विक्रमी संवत् १४३२ (१३७५ ई०) के आस पास दिल्ली के सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ की सेवा में रहकर ग्वालियर पर अपना अधिकार जमाया, और अनुमान १८० वर्ष बाद मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य के समय वह क़िला पीछे मुसलमानों ने ले लिया।" यद्यपि कोई प्रमाण मौजूद नहीं है तथापि अनुमान से मालूम होता है कि तंवर वीरसिंह अथवा उनके और किसी पूर्वज या उनकी संतति ने अपनी सेवा के उपलक्ष में दिल्लीश्वर से उसे पाया होगा अथवा और

मोती—ये बहुमूल्य रत्न कांति की दृष्टि से १६ श्रेणियों में विभाजित हैं और परख की लड़ियों में पिरोये गये हैं। ३० मोहर तथा उससे अधिक मूल्य वाले, बीस बीस मोती सूत में पिरोकर पहली लड़ी बनाई गई है; २६¾ मो० से १५

किसी उपाय से तुग़लक़ वंश से प्राप्त किया होगा। तुग़लक़ वंश के शासकों को अलाउद्दीन से मिला होगा।

अब विचारणीय विषय यह है कि अलाउद्दीन को मालवा के किस हिन्दू राजा से कोहनूर मिला। मालवा में भी अलाउद्दीन (१०१७ ई०) नामक एक शासक हुआ है। परन्तु यहाँ पर उससे अभिप्राय नहीं है। यहाँ पर तो अलाउद्दीन खिलजी से तात्पर्य है (Erskine's Memoirs of Sultan Babur, 1918, Vol. 2 P. 191)। खुसरो अलाउद्दीन का समकालीन था। वह प्रसिद्ध फ़ारसी लेखक और कवि था। उसने अपने ग्रंथ "आशिक़ा" में लिखा है कि जब सुल्तान अलाउद्दीन के वज़ीर ऐनुलमुल्क (फ़ूलमलिक काफ़ूर) ने मालवा के राजा कोका या महलक देव को पराजित किया था, तो अलाउद्दीन ने समाचार पाने पर दिल्ली में सात दिन तक रोशनी करवाई थी (History of India by Elliot and Dowson, Vol. 3 P 550)। 'आईने-अकबरी' के तीसरे ग्रंथ के अनुसार मालवा के शासकों में उस समय हरनन्द था। कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया जिल्द ३ पृ० १११ के अनुसार इस हरनन्द का ही नाम मुसलमान ऐतिहासिकों ने कोका लिखा है। अनुमान होता है कि इसी हरनन्द से ऐनुलमुल्क ने कोहनूर हीरा लिया होगा।

जो कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि एक विलक्षण हीरा सन् १३०४ ई० के पहले से १५५५ ई० तक मालवा, ग्वालियर और दिल्ली के शासकों के पास रहा है। अकबर और जहाँगीर के समय में उसका पता नहीं चलता।

"शाहजहाँ-नामा" के लेखक इनायत ख़ाँ के अनुसार तख़्तताऊस में एक हीरा १४ लाख रुपए का लगा था। पर यह कोहनूर नहीं मालूम होता। "ए फ़ारगॉटेन इम्पायर" (A forgotten Empire by Sewell P. 399) के अनुसार कोहनूर बीजापुर के अली आदिल शाह ने कृष्णा नदी के तट पर कोलूर में पाया था। इतिहासकार फ़ैरिश्ता सूज़ा के अनुसार तालीकोट में १५६५ ई० में राम राजा के मारे जाने के बाद विजयनगर की लूट में एक हीरा अली आदिल शाह को मिला था, जो साधारण अंडे के बराबर था। राम राजा उसे अपने घोड़े के मुंह के श्रृङ्गार में लगाता था। १६५६ ई० में मुग़ल सेनापति मीर जुमला उस तरफ़ साम्राज्य स्थापित कर रहा था। उसने उसे पाकर शाहजहाँ को भेंट के रूप में दिया था। परन्तु 'शब्दसागर' (पृ० ६५१) के अनुसार "सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में यह हीरा ग्वालियर के एक राजा ने गोलकुंडा के एक बादशाह को दिया था।" १६६५ ई० में टैवरनियर ने इसे सम्राट औरङ्गज़ेब के यहाँ देखा था और उसके सम्बन्ध में लिखा है:—"यह

कोहनूर
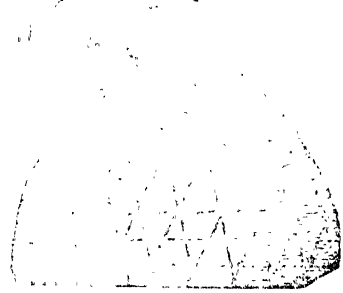
जैसा टैवरनियर ने देखा था।

हीरा मुग़ल महान् के अधिकार में है। उसने मुझे अन्य हीरों के साथ इसे भी

मोहर तक दूसरी लड़ी में; १४$\frac{३}{४}$ से १२ मो० तक तीसरी में; ११$\frac{३}{४}$ से १० मो० तक चौथी में; ६$\frac{३}{४}$ से ७ मो० तक पांचवीं में; ६$\frac{३}{४}$ से ५ मो० तक छठी में; ४$\frac{३}{४}$ से ३ मो० तक सातवीं में; २$\frac{३}{४}$ से २ मो० तक आठवीं में; १$\frac{३}{४}$ मो० से १ मो० तक नवीं में; १ मो० से कम ५ रु० तक दसवीं में; ५ रु० से कम २ रु० तक ग्यारहवीं में; २ रु० से कम १$\frac{१}{४}$ रु० तक बारहवीं में; १$\frac{१}{४}$ रु० से कम ३० दाम तक तेरहवीं में; ३० दाम से कम

दिखलाने की कृपा की।······मुझे इसे तौलने की भी आज्ञा मिली। मैंने निश्चय किया कि यह ३७६$\frac{१}{२}$ रत्ती या २१९$\frac{९}{१६}$ कैरट का है। जब यह कटा नहीं था तो मेरे पूर्व कथनानुसार ९०७ रत्ती या ७९३$\frac{५}{८}$ कैरट का था। यह पत्थर वैसी आकृति का है जैसी कि अंडे को बीच से काटने पर होजाती है" (Travels In India by Tavernier 1925 Vol. 11, P. 97)। २७९$\frac{९}{१६}$ फ़्लोरेनटाइन कैरट २६८$\frac{१९}{५०}$ इंग्लिश कैरट के बराबर होते हैं। हारटेनज़ियो बोर्जियो (Hortensio Borgio) नामक एक विनीशियन के बुरी तरह से खरादने के कारण उसकी तौल में कमी होगई।

१७३९ ई० में औरंगज़ेब के दुर्बल वंशज मुहम्मद शाह से उसे नादिर शाह फ़ारस ले गया। उसीने इसका नाम कोहनूर रक्खा। १७४७ ई० में नादिर शाह के क़लात में मारे जाने पर कोहनूर उसके पौत्र शाहरुख को मिला। १७५१ ई० में काबुल में दुर्रानी वंश के संस्थापक अहमद शाह के पास आया। उससे उसके पुत्र तैमूर को, जो काबुल में आकर रहा था, मिला। फिर उसके बाद १७९३ ई० में उसके पुत्र शाहज़मां और फिर उसके तीसरे भाई सुल्तान शुजा को मिला। शाह शुजा को काबुल की गद्दी पर बैठने और मुहम्मद के गद्दी से उतारे जाने तथा क़ैद किये जाने के बाद १८०९ में इलफिंस्टन ने उसे शुजा को कंकण में पहने हुये देखा था। उसने लिखा है कि कोहनूर उसी शक्ल का था, जैसा कि टैवरनियर का लेख है। (Account of the Kingdom of Kabul, Ed. 1907, Vol. II, P. 325, note.) अन्त में शुजा को दोस्त मुहम्मद ने गद्दी से उतार दिया। शाहशुजा भाग कर काश्मीर पहुँचा, जहां के शासक अता मुहम्मद ने उसे क़ैद कर लिया।

१८१२ में शाह शुजा और ख़ान ज़मां के परिवार लाहोर पहुँचे। पंजाब के शासक रणजीत सिंह से शुजा की बेगम ने प्रार्थना की—"यदि आप मेरे पति को छुड़ादें तो मैं आपको कोहनूर हीरा दे दूंगी।" बन्धन से मुक्त होने पर शुजा बातें बनाने लगा। अन्त में एक दूसरे ने पगड़ी बदली। रणजीत सिंह ने उसके जीवन-निर्वाह के लिए पंजाब में जागीर नियत करदी और उसने उसे कोहनूर देदिया।

रणजीत सिंह बहुधा राज कार्यों में उसे अपनी भुजा पर बांधे रहते थे। अपनी मृत्यु के समय रणजीत सिंह ने उसे जगन्नाथ धाम भेजवाने की इच्छा प्रकट की, उस समय यह १० लाख पौण्ड का था। (The Punjab by Steinbach, 1846, P. 16) किन्तु अन्त में वह कहीं नहीं भेजा जा सका। १८३९ ई० में उनकी मृत्यु के पश्चात् यह रत्नागार में रख दिया गया। फिर रणजीत सिंह की विधवा महिषी

२० दाम तक चौदहवीं में ; २० से कम १० दाम तक पन्द्रहवीं में ; १० से कम ५ दाम तक सोलहवीं में। प्रत्येक मोती अपनी श्रेणी के गणनानुसार उतने ही धागों में पिरोया गया है ; जैसे सोलहवीं श्रेणी के मोती सोलह धागों में पिरोये गये हैं। हर लड़ी के धागों के सिरे पर ख़ास शहंशाही मोहर होती है। इस कारण,

---

झिन्दन उसको दिलीपसिंह की भुजा पर बांधने लगीं। (विश्वकोश)

जब पंजाब पर १८४६ ई० में ब्रिटिश-सरकार का अधिकार हुआ, और दिलीप सिंह को ५० हज़ार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देकर पंजाब के बाहर रहने की आज्ञा दी गई तथा सिक्खों की जागीरें ज़ब्त करके उनकी पेन्शनें नियत की गईं, उसी समय पंजाब के शासन प्रबन्ध के लिए एक बोर्ड बनाया गया था। लार्ड डलहौसी ने उसका प्रेसीडेण्ट लार्ड लारेन्स को बनाया। तभी यह हीरा लार्ड लारेन्स के पास आया। वे उसको एक टीन के बक्स में बन्द करके भूल गये। जब उनसे मांगा गया तब २६ मार्च १८४६ ई० को इंग्लैण्ड भेजा गया और ३ जून १८४६ ई० को वह वहाँ पहुँचा।

१८५१ ई० में हाइड-पार्क की प्रदर्शिनी में वह प्रदर्शित किया गया। उस समय उसका वज़न १८६ $\frac{१}{१६}$ कैरट था और उसका मूल्य १४ लाख पौण्ड निर्धारित हुआ था। १८५२ ई० में क्विन विक्टोरिया की इच्छा से अधिक आब लाने के लिए इसके तराशने का काम मेसर्स गैरड्'स को सौंपा गया। उन्होंने ऐमूस्टर्डम के वूर सेंजर नामक हीरा तराश से ३८ दिन तक इसे तरशवाया। इसमें उसके तीन टुकड़े होगये। बड़े टुकड़े को गुलाब जैसा बनाने के लिए उसे फिर तराशा गया। (विश्व कोश)। इसमें ८००० पौण्ड व्यय हुए। घटते घटते अब १०६ $\frac{१}{१६}$ कैरट का रह गया है और उसकी आकृति इस प्रकार की

कोहनूर
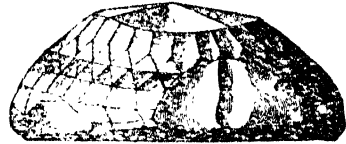
वर्तमान रूप।

है। आज कल कोहनूर टावर आफ़ लण्डन के स्टेट-ज्वेलरी रूम में, साम्राज्ञी मेरी के ताज में जड़ा हुआ, रक्खा है।

कितने ही ऐतिहासकों के मत से यह हीरा (जो अब इंग्लैण्ड में है) बाबर वाला हीरा नहीं है, वरन् मीर जुमला वाला है, जिस पर कटने के निशान लोगों ने बराबर देखे हैं, और उनका उल्लेख अपने ग्रंथो में किया है। उनके अनुसार १६५१ ई० में वह ६०० रत्ती या ७८७ $\frac{१}{२}$ कैरट का था। टैवरनियर ने १६६५ ई० में इसे ३१६ $\frac{१}{२}$ रत्ती या २७१ $\frac{९}{१६}$ फ्लोरैन्टाइन कैरट या २६८ $\frac{१९}{५०}$ इंग्लिश कैरट का देखा था। किन्तु बाबर का हीरा ८ मिस्क़ाल या ३२० रत्ती या १८६ $\frac{९}{१६}$ कैरट का था। मि० बाल के अनुसार टैवरनियर की रत्ती २.६६ ट्राय ग्रेन के बराबर थी और बाबर की १.८४२ ग्रेन की। मि० बाल (Travels in India, translated by V. Ball, 1925, Vol II, P. 338-339) के अनुमानानुसार बाबर का हीरा उस समय शाहजहां के अधिकार में रहा होगा, जब कि टैवरनियर ने औरंगज़ेब के जवाहरात देखे थे। जब शाहजहां मर गया तब वह उसके अधिकार में आगया होगा।

प्रत्येक मोती बदल जाने के गड़बड़ से बच जाता है। इसके अतिरिक्त हर मोती में एक विवरण लगाकर भ्रम का मूल साफ कर दिया गया है।

दैनिक और मासिक वेतन पर काम करने वालों के अतिरिक्त, दूसरे

नादिरशाह उसे दूसरे जवाहरात के साथ फ़ारस लेगया होगा। यह हीरा अब तक फ़ारस के बादशाह के पास है। यह तोल में भी बाबर के हीरे के बराबर अर्थात् १८६ कैरट का है। इसका नाम 'दरियाय-नूर' है।

कोहनूर भी जब इंग्लैण्ड गया था तो $१८६\frac{१}{६}$ कैरट का था। बाल के मत से टैवर-नियर के समय से १८५० ई० तक लगभग $८२\frac{१२७}{४००}$ कैरट ($२६८\frac{४९}{५०}$—$१८६\frac{१}{१६}$) की जो उसमें कमी हो गई है उसका कारण उसका विभिन्न शासकों के पास जाना तथा उनकी आवश्यकता के अनुसार उसका तराशा जाना है। यह कमी शाहरुख, शाह शुजा या शाह ज़मां के समय में हुई है (Travels in India, Translated by Ball, Vol. II, P. 315)।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica, 1929, Ed. 14, Vol. 13, P. 474) में लिखा है:—"कोहे-नूर—एक प्रसिद्ध हीरा, जिसके इतिहास का पता निश्चय पूर्वक चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से लगाया जा सकता है।" इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि यह मीर जुमला से दो ढाई सौ वर्ष पूर्व अर्थात् मालवा के हिन्दू शासक के समय का है इसी आईन के अन्तिम पैरे में $५\frac{१}{२}$ टांक ४ रत्ती ($९२२\frac{१}{२}$ रत्ती) तक के हीरों का उल्लेख हुआ है। तोल के विचार से अकबर के हीरे $९२२\frac{१}{२}$ रत्ती तक के थे; किन्तु औरङ्गज़ेब का हीरा कटने के पहले केवल ९०० रत्ती का था। संभव है शाहजहां ने अधिक आब लाने के लिए किसी उत्तम कारीगर से अकबरी हीरे को ही कटवाया हो और टैवरनियर ने इसी को ९०० रत्ती का लिखा हो। 'विश्व कोश' के अनुसार रणजीतसिंह का हीरा ही बाबर का हीरा है।

बाल ने "ट्रेविल्स-इन-इण्डिया" के भाषान्तर में कई स्थानों पर टैवरनियर की इस बात की सख्त शिकायत की है कि उन्होंने रत्ती को कैरट और कैरट को रत्ती लिख दिया है और उनकी तोल में भी सन्देह है। साथ ही शाहजहां को बन्दी गृह में यह हीरा कैसे मिला होगा? यह बात भी समझ में नहीं आती। इतना ही नहीं बाल ने उनकी भूलों को जगह जगह पर प्रकट किया है। जहां तक टैवरनियर की नाप जोख का सम्बन्ध है वह तो बाल के शब्दों से ही विश्वसनीय नहीं है। अब रही बाल के ऐतिहासिक ज्ञान की बात—इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि उन्होंने दोस्त मुहम्मद को शुजा का भाई बतलाया है (Travels in India, Appendix 2), जो कि बिल्कुल ग़लत है। वास्तव में मुहम्मद बारकज़ई खानदान का था और शाह शुजा दुर्रानी वंश का (Oxford History of India by Vincent Smith, 1923, P. 675.)। ऐसी अवस्था में कोहनूर की ऐतिहासिक शृङ्खला तथा उसके परिमाण का ठीक निश्चय होना कठिन है।

जो कुछ भी हो इस विरोधाभासात्मक सामग्री की उपस्थिति में तथा प्रमाणों की व्यवस्थित शृङ्खला न मिलने की अवस्था में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि शाह फ़ारस का हीरा ही बाबर का हीरा है और विक्रमादित्य का हीरा कोहनूर हीरा नहीं है।

कर्मचारियों को मोती बेधने का परिश्रम-पुरस्कार निम्नलिखित क्रमानुसार दिया जाता है : — जो प्रथम श्रेणी के मोती को बेध कर लड़ी के योग्य बनाता है १ चरन[1] ($\frac{1}{4}$ रु०) पाता है; दूसरी श्रेणी के मोती का बेधक अष्ट ($\frac{1}{8}$ रु०); तीसरी श्रेणी का दसा ($\frac{1}{10}$ रु०); चौथी श्रेणी का ३ दाम; पांचवीं श्रेणी का सूकी[1]; छठी श्रेणी का १ दाम; सातवीं श्रेणी का $\frac{3}{4}$ दाम; आठवीं श्रेणी का $\frac{1}{2}$ दाम; नवीं श्रेणी का $\frac{1}{4}$ दाम; दसवीं श्रेणी का $\frac{1}{5}$ दाम; ग्यारहवीं श्रेणी का $\frac{1}{6}$ दाम; बारहवीं श्रेणी का $\frac{1}{7}$ दाम; तेरहवीं श्रेणी का $\frac{1}{8}$ दाम; चौदहवीं श्रेणी का $\frac{1}{9}$ दाम; पन्द्रहवीं श्रेणी का $\frac{1}{10}$ दाम; सोलहवीं श्रेणी का $\frac{1}{11}$ दाम (११ मोती के दाने बेधने पर १ दाम) तथा कम।

इन अनमोल रत्नों के मूल्य की अपूर्वता इतनी अधिक प्रसिद्ध है, कि उसके सम्बन्ध में कुछ लिखना व्यर्थ है। पर आज कल जो मणिमुक्ता सम्राट् के कोष में हैं, उनका ब्योरा इस प्रकार है :—**लाल**—११ टांक[2] २० रत्ती भर का, और **हीरा**—५$\frac{1}{2}$ टांक ४ रत्ती भर का; हर एक का मूल्य एक लाख रुपए। **पन्ना**—१७$\frac{3}{8}$ टांक ३ रत्ती भरका, मूल्य ५२००० रुपए। **याक़ूत**—४ टांक ७$\frac{3}{4}$ रत्ती भर का, और **मोती**—५ टांक भर का; हर एक का मूल्य ५०००० रुपए।

आईन ४।

टकसाल।

यतः टकसाल की समृद्धि कोष की पुंजीवर्द्धक होती है और प्रत्येक कार्य उसी से शोभा प्राप्त करता है, अतः मैं उसका कुछ हाल लिखता हूँ और बागवाटिका को परितृप्त करता हूँ।

१—इन सिक्कों का पूरा हाल आगे है।

२—संस्कृत भाषा में इसे टंक कहते हैं। यह तौल में ४ माशे भर का होता है। पर अकबरी टांक ४ माशे से कुछ अधिक था; क्योंकि सिक्कों का जो ब्योरा अबुल फ़ज़्ल ने आगे दिया है, उससे प्रकट होता है कि एक दाम का वज़न ५ टांक या १ तोला १ माशा ७ रत्ती था। इस हिसाब से एक टांक, तौल में ४ माशा १$\frac{2}{5}$ रत्ती भरका होता है।

नागरिकों और ग्रामीणों का कार्य द्रव्य से चलता है और हर एक अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करता है। विरक्त उसको अपने जीवन-स्थिरता की सामग्री बनाता है, और सांसारिक अपने अभीष्ट सिद्धि का अंतिम पड़ाव जानता है। निदान, सबका प्रयोजन उससे सफल होता है। बुद्धिमान उसको लौकिक और पारलौकिक आशाओं की पूर्ति का प्रधान सोता जानता है। मनुष्य जाति के लिए तो वह परमावश्यक है; क्योंकि जीवन-अस्तित्व के आधार, भोजन और वस्त्र का वह विशेष साधन है। उपरोक्त दोनों वस्तुएं बहुत कष्ट और परिश्रम से प्राप्त होती हैं, जैसे बोना, सींचना, काटना, साफ़ करना, गूंधना, पकाना, कातना, ताना तनना और बुनना इत्यादि। इन कार्यों के साधन, बिना अनेक सहायकों के पूरे नहीं हो सकते; क्योंकि उनके करने के लिए एक मनुष्य का बल पर्याप्त नहीं होता, और नित्यप्रति एक आदमी के लिए उक्त कार्यों का करना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। मनुष्य के लिए एक घर का होना भी आवश्यक है, जिसमें कि वह कुछ दिन का सामान रख सके। फिर चाहे वह तम्बू हो या खोह, उसे घर कहते हैं। मनुष्य की उत्पत्ति और उसके जीवन की स्थिरता निम्न लिखित पांच पदार्थों पर निर्भर है,—पिता, माता, पुत्र, सेवक और आहार; इनमें से अन्तिम पदार्थ सबका कार्य-साधक है। इसके अतिरिक्त अधिकतर सामान टिकाऊ नहीं होता और टूट फूट जाता है; अतएव प्रत्येक दशा में द्रव्य की आवश्यकता होती है। द्रव्य, पदार्थ की प्रौढ़ता और कठोर गढ़ाई के कारण, बहुत समय तक दृढ़ रहता है, और थोड़े से भी बहुत काम निकलता है। यात्राओं में भी काम आता है; क्योंकि थोड़े दिनों का भी भोजन ले जाना कठिन होता है, फिर महीनों और सालों के लिए क्या कहा जाय!

ईश्वर की कृपा सहायक हो गई, और यह बहुमूल्य मुक्ता (सुवर्ण) अस्तित्व-तट पर आगया तथा बिना परिश्रम किये जीवन-सामग्री तैयार हो गई। इसके सबब से मनुष्य के साहस का मस्तक अयोग्यता की धूल से नहीं सौंदता और ईश्वरोपासना भली भांति बन पड़ती है। इसके गुण वर्णन नहीं हो सकते; यह कोमल शरीर, स्वादिष्ट और सुगन्धित होता है। इसके मिश्रित अवयव[१] प्रायः तौल में बराबर होते हैं। चारों तत्वों[२] में से प्रत्येक के लक्षण इसकी अवस्था

१—मध्य युग के रासायनिकों का मन्तव्य है कि सोने में, गन्धक और पारा समभाग में मिले होते हैं। गंधक से ही सोने में रंग आता है। देखिये आईन १३।

२—मुसल्मान तत्वज्ञ केवल चार तत्व मानते हैं। आकाश की गणना वे तत्वों में नहीं करते।

के मुखड़े से प्रकट होते हैं। रूप से अग्नि, शुद्धता से वायु, कोमलता से जल और गुरुत्व से पृथ्वी का ज्ञान होता है; और इसी लिए इसमें जीवन-दायक अनेक चमत्कार होते हैं। अन्य धातुओं के प्रतिकूल, चारों तत्वों में से कोई भी तत्व, उसे क्षति नहीं पहुँचा सकता। पावक से वह जलता नहीं, वायु उसमें असर नहीं करती, पानी युगों तक उसका रूप नहीं बदलता और मिट्टी उसे खाती नहीं है। इसी कारण तत्वज्ञान सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों में बुद्धि को—जिस से हर कार्य की युक्ति कार्य-रूप में परिणित होती है—**नामूसे-अकबर**[१] कहा है; और सुवर्ण को—जिस पर जीवन-सामग्री निर्भर है—**नामूसे-असग़र**[२] बतलाया है। गुण वाचक दो शब्दों में, सोना न्याय-रक्षक एवं लोक-व्यवस्थापक है। वस्तुतः वस्तुओं की सुव्यवस्था उसी से होती है और न्याय की नीव भी उसी पर आधारित है। अद्वैत ईश्वर ने उसकी सुश्रूषा के लिए चांदी और तांबे को प्रचलित किया, और इनको मनुष्य के सम्पन्न होने का सहायक साधन बनाया है। इन्हीं दूरदर्शी विचारों से, न्यायी शासकों और जाग्रतभाग महीपालों ने इन नगदों के प्रचार में उत्साह दिखलाया है, और इस कार्य की उन्नति के लिए टकसालें स्थापित की हैं। इस कार्यालय की सफलता इस बात पर निर्भर है कि सत्यनिष्ठ, परिश्रमी और बुद्धिमान कर्मचारी नियुक्त हों, और विश्वधाम का स्तम्भ उन्हीं के स्थिर विचारों और निरीक्षण पर निर्मित हो।

आईन ५

टकसाल के सहायक।

पहला **दारोग़ा**—एक बुद्धिमान सचेत व्यक्ति होता है, जो अपने विचार-गांभीर्य और साहस विशालता से अपने साथियों का कष्टकर कार्य-भार शीघ्र संचालन के कंधे पर रखता है, हर एक को उसके काम काज में लगाये रखता है और अपने परिश्रम तथा सत्यता द्वारा कार्य को पूरा करता है।

१—बड़ा देव दूत। २—छोटा देव दूत। 'हरीरी' अरबी भाषा का प्रामाणिक-ग्रंथ है। उसमें लिखा है, "यदि यह बात धर्म के विरुद्ध न होती, तो मैं सोने को शीश नवाता और केवल 'ज़र' न कह कर 'ज़र-अले-उस्सलाम' कहता।"

संस्कृत में सोने को हिरण्य और चाँदी को रजत कहते हैं। सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति; अर्थात् समस्त गुण कंचन के आश्रित हैं। (भर्तृहरि)

दूसरा **सैरफ़ी**—इस महत्वपूर्ण विभाग की सफलता इसके अनुभव पर निर्भर है, और मुद्राओं की खराई के अनुसार उनकी श्रेणियां निश्चय करने का भार उसके कर्तव्यपरायण सत्याचारी हाथों पर अवलम्बित है। सुसमय के कारण, इस राज्य में बहुत से कार्य कुशल सर्राफ़ एकत्र हो गये हैं और सम्राट् के ध्यान देने से सोना और चांदी खराई के सर्वोच्च पद पर पहुंच गये हैं। अजम (ईरान) में सब से खरे सोने को **दहदही** कहते हैं, परन्तु वहां के लोग सोने की खराई दस अयारों[1] (अंशों) से अधिक नहीं जानते। हिन्दी भाषा में खरे सोने को **बारह बानी** कहते हैं, क्योंकि यहाँ के लोग खराई बारह प्रकार की मानते हैं।

१—अयार शब्द अरबी भाषा का है। इसका अर्थ सोने और चांदी की चाश्नी (बानगी) है। चांदी और सोने के तौलने और कसौटी पर कसने को भी अयार कहते हैं। इस स्थल पर यह शब्द खराई के अंशों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो १० अंश मानी गई है।

अकबर के समय में खराई के लिए बान शब्द प्रचलित था। सब से खरे सोने को १२ बान का सोना कहते थे। उससे कम दर्जे का ११, १० और ६ आदि अंशों का होता था।

आज कल इसके लिए कई शब्द व्यवहृत होते हैं। जैसे—कैरट (Carat), टच (touch) और बट्टा आदि। सब से खरा सोना २४ कैरट का, १०० टच का, पक्का सोना, पांसा, ख़ालिस, शुद्ध, बीस बिस्वा, सोलह आने पक्का, बिना छीज बट्टा आदि आदि नामों से पुकारा जाता है। परन्तु जो खराई में जितना कम होता है वह उसी के अनुसार उतने ही कम कैरट, टच या बट्टे का सोना कहलाता है।

कैरट के सम्बन्ध में "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका का" (Encyclopædia Britannica, 1929, Ed. 14 Vol. 4 P. 827) में लिखा है—"कैरट एक छोटा सा बांट है (जो पहले बीज के रूप में था) जो हीरों और मूल्यवान पत्थरों के तौलने तथा सोने की शुद्धता के निश्चय करने के लिए परखने में काम आता है·········इस समय भिन्न भिन्न स्थानों में कैरट की तोल में अन्तर है। १८७७ ई० में लण्डन, पैरिस और एम्सटर्डम के जौहरियों के सिण्डीकेट ने कैरट का वज़न २०५ मिलीग्राम (३·१६३ ट्राय ग्रेन) नियत किया था। दक्षिणी अफ़रीका का कैरट गार्डनर विलियम्स के अनुसार ३·१७६ ग्रेन का होता है। सोने की शुद्धता निश्चित २४ कैरट के अनुपात से जांची जाती है। इस प्रकार निकृष्ट धातु के २ भाग मिलने पर २२ कैरट का सोना बनता है।" जिस सोने में तांबा मिला होता है, कैरट का प्रयोग प्रायः उसी के लिए होता है। कैरट की तौल साधारणतः ४ ग्रेन की मानी जाती है। कदाचित् कैरट अरबी के क़ीरात शब्द से निकला हो। क़ीरात की तौल आधा दांग या ४ जौ होती है, (ग़यासुल्लुग़ात)।

टच का अर्थ परख और कमी है। जिस सोने में चाँदी और तांबा दोनों धातुएँ मिली रहती हैं, अधिकतर उसके लिए टच शब्द प्रयोग होता है। जन साधारण हर प्रकार के सोने के लिए टच और कैरट प्रयोग करते हैं।

बट्टे का प्रयोग आम तौर से होता है, जैसे कहते हैं—यह पक्का सोना नहीं है, यह एक आने बट्टे या ६ रत्ती बट्टे का है।

लोग पहले, पुराने **हुन** के सोने को—जो एक सिक्का है और दक्षिण में प्रचलित है—सब से बढ़िया जानते थे और उसका खरापन १० अंश मानते थे; परन्तु सम्राट् की जांच में उसकी खराई केवल ८½ अंश स्थिर की गई है। अलाउद्दीन के गोल छोटे दीनार के सोने की खराई, लोग १२ अंश मानते थे; पर आज के दिन वह १०½ अंश की सिद्ध हुई है।

इस कला के निपुण व्यक्ति आज कल के सोने से इतिहास तैयार करते हैं और लोगों को उसकी कथाएं सुनाते हैं तथा इसको रसायन का सोना ख्याल करते हैं। वे कहते हैं कि खान का सोना इस दर्जे को नहीं पहुंचता है। परन्तु सम्राट् के ध्यान देने से वह उस दर्जे पर पहुँच गया और अनुभवी व्यक्ति विस्मित हो गये। वास्तव में अब उसकी खराई का दर्जा न इससे घटेगा और न बढ़ेगा। सत्यशील, वाक्पटु एवं तथ्यवादी पृथ्वी-पर्यटक इस श्रेणी के सोने का पता कहीं नहीं बतलाते हैं। परन्तु जब उसे गलाते हैं, तो सूक्ष्म कण उससे अलग हो जाते और राख में मिल जाते हैं। मूर्ख उस सोने को मल ख्याल करते हैं, परन्तु गुणी उसे राख से निकाल लेते हैं। यद्यपि आघात वर्द्धनीय खनिज-स्वर्ण,[1] गलाने से गल जाता और राख होजाता है तथापि विशेष क्रिया द्वारा वह (सोना) अपनी मूल अवस्था को लौट आता है किन्तु उसमें कुछ कमी होजाती है। सम्राट् के दृष्टि-प्रकाश से उस कमी की असलियत प्रकट होगई और छलियों की धूर्तता पकड़ ली गई।

१—कौटिल्य ने सोने के आठ भेद लिखे हैं—१ जाम्बूनद, जोकि जम्बू नदी में निकलता है; भट्ट स्वामी के मत से यह गुलाबी सेब के रंग का होता है। २ शातकुम्भ, यह शात कुम्ब पर्वत से प्राप्त होता है; इसका रंग कमल-पुष्प-दल के समान होता है। ३ हाटक, जो कि हाटक नाम की प्रसिद्ध खानों से निकाला जाता है। ४ वेणव, जो कि वेणु पर्वत की उपज है; इसका रंग कनक चम्पा के समान होता है। ५ शृङ्गशुक्तिज, जो कि शृङ्गशुक्ति से निकाला जाता है; इसका रंग लाल संखिया के समान होता है। ६ जातरूप। ७ रसविद्ध। ८ आकरोद्गत, जो खान से निकलता है।

जो सोना कमल के फूल की पंखुड़ियों के रंग का, मृदु चमकीला और टनटनाने वाला हो, श्रेष्ठ होता है। साथही रंग में एक समान हो, कसौटी पर कसा जाकर एक जैसी लकीर दे। खोखला तथा पोला न हो। पक्का, चिकना तथा शुद्ध हो। पहनने पर शोभा बढ़ावे। सदा ही नया मालूम पड़े, तथा चमकता रहे। आंखों तथा हृदय को प्रिय मालूम पड़े। लाल पीले रंग का सोना मध्यम कोटि का, और केवल लाल रंग का निकृष्ट होता है।

आईन ६।

बनवारी।

बनवारी शब्द बानवारी का संक्षिप्त रूप है। यद्यपि इस देश में बुद्धिमान सर्राफ अपने अनुभव द्वारा रंग और सफाई से धातु के खरेपन का दर्जा जान लेते हैं तथापि दूसरों के प्रबोध के लिए यह प्रशंसनीय व्यवस्था जारी की गई है।[१]

ताँबे और इसी प्रकार की दूसरी धातुओं के कुछ क़लम बनाये हैं, जिनमें से हर एक के सिर पर थोड़ा सा सोना लगा दिया है, और हर क़लम पर उसके सोने के खरेपन का दर्जा लिख दिया है। जब नए आये हुये सोने की जाँच करते हैं, तो उस सोने से और कलमों से कसौटी[२] पत्थर पर कई रेखाएँ खींचते है। जिस कलम की लकीर से नए सोने की रेखा का रंग रूप मिल जाता है वह उसी खराई का सोना समझा जाता है। परन्तु यह आवश्यक है कि रेखाएँ एक ही प्रकार की खींची जांय और खींचने में एक ही सा बल प्रयोग किया जाय, उसमें छल छिद्र की धूल का संसर्ग न हो।

इस नियम का संचालन तरह तरह के बानों का सोना बनाने पर निर्भर है। इसकी क्रिया इस प्रकार है—एक माशा खालिस चांदी और उतना ही

१—कौटिल्य ने सुवर्णाध्यक्ष के कर्तव्यों मे लिखा है—कसौटी पर कसने पर जब सोने का रंग हल्दी की तरह हो तो उसको सुवर्ण कहते हैं। जब इस सुवर्ण (१६ माषक वाला) के एक में सोलह काकणी तक के परिमाण में एक से सोलह काकणी तक क्रमशः तांबा मिलाते है, तो सोलह प्रकार का सोना तैयार हो जाता है। कसौटी पर पहले उत्तम सोने की रेखा बनाकर फिर दूसरे सोने की रेखा खींची जाय। कसौटी पर जो रेखा खींची जाय वह नाखून या अंगूठे से मिट जानी चाहिये। यदि उसके मिटाने के लिए गेरु प्रयुक्त करना पड़े तो बेईमानी का अनुमान करना चाहिये। गो मूत्र में जाति हिंगुलक (ईंगुर) या पुष्प कासीस डाल कर सोना डाला जाय और उसको अंगूठे से रगड़ा जाय तो सोना सफेद हो जाता है।

२—केसर की तरह, चिकनी मृदु और चमकीली कसौटी श्रेष्ठ होती है। कलिंग देश की मूंगे के रंग की भी कसौटी श्रेष्ठ मानी जाती है। एक समान लाल रंग की कसौटी खरीदने और बेचने के ही काम मे आती है। हाथी के रंग की या हरे रंग की कसौटी बेचने के और स्थिर, कठोर भिन्न वर्ण एवं काले रंग की (कसौटी) खरीद करने मे लाभदायक होती है। इनमें भी सफ़ेद, चिकनी, बराबर रंग वाली, मृदु तथा चमकीली श्रेष्ठ मानी जाती हैं। (कौटलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण २)।

खालिस तांबा इकट्ठा गला कर थकिया बनाते हैं, और फिर उस मिश्रण को ६ माशे खालिस सोने के साथ—जो १०$\frac{1}{2}$ बान खरा हो—गलाते हैं, खोटे सोने का टुकड़ा बन जाता है। इस टुकड़े में से एक माशा सोना लेकर उसके सोलह भाग करते हैं, प्रत्येक भाग आधी रत्ती का होता है। जब ७$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोना (१०$\frac{1}{2}$ बान का) इस मिश्रण के एक भाग ($\frac{1}{2}$ रत्ती) के साथ मिलाते हैं, तो १०$\frac{1}{4}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि ७ रत्ती खालिस सोने को मिश्रण के दो भागों के साथ मिलावे तो १० बान का सोना बनेगा। अगर ६$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोने को मिश्रण के तीन भागों के साथ गलावे तो ९$\frac{3}{4}$ बान का सोना तैयार होगा। यदि ६ रत्ती विशुद्ध सोने को खोटे सोने के चार भागों में मिलावे, ९$\frac{1}{2}$ बान का सोना बनेगा। अगर ५$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोने को खोटे सोने के पांच भागों के साथ मिश्रित करे तो ९$\frac{1}{4}$ बान का सोना तैयार होगा। जब ५ रत्ती शुद्ध सोने को उसके छः भागों के साथ मिला देते हैं तो ९ बान का सोना तैयार होता है। यदि ४$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोना खोटे सोने के सात हिस्सों के साथ मिलावे, तो ८$\frac{3}{4}$ बान का सोना बनेगा। अगर ४ रत्ती शुद्ध सुवर्ण को उसके आठ भागों के साथ गलाते हैं तो ८$\frac{1}{2}$ बान का सोना तैयार होता है। जब ३$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोने को उसके नौ हिस्सों के साथ मिलाते हैं तो ८$\frac{1}{4}$ बान का सोना बनता है। जब ३ रत्ती खालिस सोना उसके दस भागों के साथ गलावे, तो ८ बान का सोना बनता है। जब २$\frac{1}{2}$ रत्ती खालिस सोना, मिलावटी टुकड़े के ग्यारह भागों के साथ गलाया जाता है तो ७$\frac{3}{4}$ बान का स्वर्ण हाथ लगता है। यदि २ रत्ती खालिस सोना, उसके बारह भागों के साथ गलावे तो ७$\frac{1}{2}$ बान का सोना तैयार होता है। यदि १$\frac{1}{2}$ रत्ती शुद्ध सोने को मिश्रित के तेरह भागों से मिलावे तो ७$\frac{1}{4}$ बान का सोना बनेगा। जब १ रत्ती खालिस सोने को उसके चौदह भागों के साथ गलावे तो ७ बान का सोना रह जायगा। जब आधी रत्ती खालिस सोने को उसके पन्द्रह भागों से मिलाते हैं, तो ६$\frac{3}{4}$ बान का सोना तैयार होता है। इस क्रिया का सारांश यह है, कि खोटे सोने की प्रति आधी रत्ती की मिलावट असली सोने के खरेपन में चौथाई बान की कमी पैदा कर देती है। उस खोटे

सोने के टुकड़े का मान, जो दूसरे प्रयोग द्वारा तैयार हुआ है, ६½ बान होता है।

जब चाहते हैं कि ६½ बान से भी कम मान का सोना तैयार हो तो पहले मिश्रण की ½ रत्ती को जो तांबा और चांदी मिला कर तैयार किया गया था—दूसरे मिश्रण की ७½ रत्ती के साथ (जो सोने, चांदी और तांबे के मिश्रण से बना है) मिलादे तो ६¼ बान का सोना तैयार होगा। जब पहले मिश्रण की १ रत्ती दूसरे मिश्रण की ७ रत्तियों से मिलावे तो ६ बान का सोना रह जायगा। यदि उसका मान इससे भी कम करना चाहे, तो मिश्रणों में आधी आधी रत्ती बढ़ाते जांय। बानवारी में ६ बान तक की मान्य मानते हैं। इस से कम बानों के सोने का हिसाब किताब नहीं होता। यह सब कार्य **साहबे--अयार** (प्रधान—पारखी) की देख रेख में होता है, और शोभा बढ़ाता है[१]।

तीसरा, अमीन[२]--उसके निस्वार्थी और निर्लोभी होने से शत्रु मित्र निर्भीक रहते हैं। मन भेद सम्बंधी वार्तालाप के समय वह दारोगा और दूसरे लोगों का सहायक होता है। वह सत्य सत्य कहता है और झगड़ा शांत कर देता है।

चौथा, मुशरिफ़—जो हिसाब लिखने, मामला समझने और ईमानदारी से आय व्यय की शाखा को दृढ़ रखता है, और बुद्धि प्रिय रोजनामचा भरता है।

पांचवां, सौदागर—सोना चांदी और तांबा लाकर लेन देन करता है और अपना नफ़ा लेता है। और इस प्रकार कारखाने की शोभा बढ़ाता है। कर चुकाकर कोष की वृद्धि में प्रयत्न करता है। इस समुदाय की बढ़ती और व्यापार की उन्नति, न्याय की व्यापकता और कर्मचारियों की तृष्णाहीनता से होती है।

छठा, गंजूर[३]—लाभ के रुपये की चौकसी करना और लेन देन में सत्यता के साथ व्यवहार करता है।

१—कौटिल्य ने भी इस विषय में "खनिज पदार्थों के व्यवसाय संचालन" तथा "सुवर्णाध्यक्ष के कार्य" में प्रकाश डाला है।

२—अमीन का अर्थ अमानतदार अर्थात् वह व्यक्ति जिसके पास किसी अवधि के लिए धरोहर के रूप में कोई वस्तु रक्खी जाय। यहां पर आज कल के उस अदालती अमीन से आशय नहीं है, जो मौक़े की तहकीकात करता है, ज़मीन नापता, बटवारा करता या डिगरी आदि का अमलदरामद कराता है।

३—ख़ज़ांची।

छठे और प्रथमोक्त चार अधिकारियों के वेतनों में एक दूसरे के वेतन में अन्तर रहता है। इन में सब से छोटा अहदी[1] पद पाकर संसार में सफल होता है।

सातवां, तराज़ूकश[2]—सिक्कों को तौलना है। यदि सोने की १०० जलाली मोहरें जोखता है तो १$\frac{3}{4}$ दाम मजदूरी लेता है, चांदी के १००० रुपया तौलने में ६$\frac{18}{25}$ दाम; और तांबे के १००० दाम तौलने में एक दाम का $\frac{11}{25}$ पाता है। सिक्कों के कमोबेश होने पर तुलाई में भी उसी हिसाब से कमी बेशी हो जाती है।

आठवां, गुदाज़गर ख़ाम[3]—वह मिट्टी के तख्ते पर छोटी बड़ी नालियां बनाता और उन पर तेल चुपड़ देता है। फिर सोना चांदी गलाकर, उन नालियों में डाल देता है, सलाख बन जाती हैं। पर तांबे के लिए तेल से चिकना करने के स्थान में केवल राख छिड़कना ही पर्याप्त होता है। पूर्वोक्त तौल (१०० मोहर जलाली) का सोना गलाने की मजदूरी ७ दाम २५ जीतल, पूर्वोक्त तौल की चांदी गलाने पर ५ दाम १३$\frac{1}{4}$ जीतल, और उपर्युक्त तौल का तांबा गलाने पर ४ दाम २१$\frac{1}{2}$ जीतल पाता है।

नवां, वर्क़ कश—वह मिलावटी सोने के वर्क बनाता है, जिनमें से हर एक की तौल छे या सात माशे और लंबाई चौड़ाई छे अंगुल होती है। उनको वह पारखी के पास लाता है। वह उनको एक सांचे में, जो तांबे का बना होता है, डालकर जांचता है। जिनको वह ठीक पाता है, उन पर अदल[4] की छाप लगा देता है, जिससे उनमें परिवर्तन न होने पावे और यह जान लिया जाय कि इन पर कार्रवाई हो चुकी है। पूर्वोक्त सोने की तौल के वर्क बनाने पर उसको ४२$\frac{2}{3}$ दाम मजदूरी मिलती है।

१—अहदी अरबी भाषा के 'अहद' शब्द से—जिसका अर्थ 'एक' होता है—बना है। अहदी से आशय उस व्यक्ति का है, जो अकेला ही कठिनतर कार्यों को कर सके। अकबर के समय में ये सिपाही का काम करते थे और बड़ी आवश्यकता के समय इन से काम लिया जाता था, बाक़ी दिन ये बैठे बैठे खाते थे। पड़े पड़े खाने के कारण ही 'अहदी' शब्द आलसियों, निठल्लुओं और अकर्मण्यों के लिये प्रयुक्त होने लगा है। ये राज दरबार में मुहर्रिरों के पदों पर, दरबार के चित्रकारों और कारखानों में भी रहते थे। मालगुज़ारी न देने वाले व्यक्तियों के दरवाज़ों पर ये डट जाते थे और उनसे बिना वसूल किये नहीं उठते थे। द्वितीय ग्रन्थ के चौथे आईन में इनके कर्तव्यादि का सविस्तर उल्लेख है।

२—डंडीदार।

३—कच्ची धातु गलाने वाला।

४—न्याय की छाप, ठीक होने का ठप्पा।

आईन ७।

खोटे सोने को साफ़ करने की रीति[1]।

जब वरकों पर अद्ल की छाप हो चुकती है, तो सोने का मालिक, पारखी की कार्यपटुता से उनकी खोटाई इस प्रकार दूर करता है :—वह १०० जलाली मोहरों की तौल के सोने के लिए ४ सेर शोरा नमक और ४ सेर कच्ची ईंटों का चूरा प्रयोग करता है। पहले वह वरकों को शुद्ध जल में धोता है, फिर उनको

१—कौटिल्य ने सोने को शुद्ध करने तथा उसको रंगीन बनाने की कई रीतियां लिखी हैं। जैसे, खोटा सोना सफ़ेद रंग का होता है। इसमें चौगुना जस्त मिलाया जाय और पत्र के आकार में पीटकर तपाया जाय। लाल पड़ने तथा पिघलने पर इसको तेल तथा गोमूत्र में डाल दिया जाय।

जो सोना खान से निकला हो, जस्त मिलाकर उसके पत्र पीटे जांय, और उनको खरल में पीटा जाय। फिर उनको तपाया तथा पिघलाया जाय। अन्त में उस गलित पदार्थ को केला तथा बज्रकन्द में डाल दिया जाय।

जो सोना तपाने के बाद अन्दर बाहर से केसरिया रंग का या कारण्ड (हंस की जाति का एक पक्षी) के रंग का हो वह उत्तम है, और जो काला या नीला पड़ जाय उसे मिलावटी समझना चाहिये।

चमकीला तथा तपनीय सोना तपनीय कहलाता है। इसमें जस्त और सेंधा नमक मिलाकर बिनवां कण्डों से तपाया जाय। इस क्रिया से इसका रंग नीला, लाल, पीला, सफ़ेद, हरा, तोते तथा कबूतर के रंग का हो जाता है। सोने में रंग देने के लिये मोरपंखी सफ़ेद चमकीले पीले रंग का तीक्ष्ण (संभवतः हीराकसीस) नामक मसाला प्रयोग किया जाय।

शुद्ध या खोटी चांदी तूतिया, जस्त, हड्डी, (शुद्ध मृत्तिका) आदि में क्रमशः चार चार बार, गोमय में तीन बार, और फिर १७ बार तूतिया तथा नमक में मिला कर तपाया जाय। इस मिश्रण को एक काकणी (घुंघची, पण या माशे का चौथाई भाग) से दो माशे तक यदि सुवर्ण में डाला जाय तो सुवर्ण का रंग सफ़ेद हो जाता है, और श्वेत तार कहलाता है। सफ़ेद रंग के सोने के ३० भाग यदि तपनीय सोने के ३ भागों के साथ मिलाकर तपाया जाय तो सोना लाल रंग का, और लाल सोना पीले रंग का हो जाता है। तपनीय सोने को गरम कर यदि उस में रंग के तीन भाग दिये जांय तो उसका रंग लाल पीला हो जायगा। तपनीय सोने का एक भाग अगर सफ़ेद के दो भागों से मिलाया जाय तो वह मूंग के रंग का बनेगा। यदि वह काले लोहे के आधे भाग के साथ मिलाया जाय तो उसका रंग काला पड़ जायगा। यदि उपर्युक्त तपनीय योग में पारा मिलाने के बाद दो बार तपाया जाय तो उसका रंग तोते के पंख की तरह हरा हो जाता है। भिन्न रंग के सोने को प्रयोग में लाने के पहले उसको कसौटी पर कस लेना चाहिये।

उसी मसाले में (शोरा नमक और ईंटों के चूरे के मसाले में) सौंद देता है। इसके बाद वरकों को एक दूसरे पर रखकर, बिनवाँ कंडों से जिनको हिन्दी भाषा में उपला कहते हैं और जो जंगली गाय का सूखा गोबर है- ढांक देता है। फिर आग जलाता और धीरे धीरे जलने देता है। उपले राख हो जाते है। जब आग बुझ जाती है तो उसके इधर उधर की राख उठा कर रख छोड़ते हैं। फारसी भाषा में उसको **खाके-खलास** और हिन्दी में **सलोनी** कहते हैं। इस राख से चाँदी निकाल लेते हैं, जिसके निकालने की क्रिया अलग लिखी जायगी। नीचे की राख वरकों सहित ज्यों की त्यों रहने देते हैं, और दो बार फिर आग जलाते हैं तथा पहली क्रिया का उपयोग करते हैं। जब तीन आंचे दे चुकते हैं, तो उसको **सिताई**[1] कहते हैं। फिर साफ पानी से धो डालते हैं, और वही मसाला लगा कर पुनः तीन बार आँचे देते हैं तथा राख अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार छः बार मसाला मिलाते, अट्ठारह आँचे देते और फिर धोते हैं। पारखी उनमें से एक तोड़ता है, यदि नरम और मुलायम आवाज आती है तो वह उसके पूर्णतया शुद्ध होने का लक्षण मानता है। अगर आवाज सख्त होती है, तो मसाला मिलाकर तीन आंचें और देते है। पुनः प्रत्येक पत्र से एक एक माशा काट कर एक पृथक पत्र बनाते हैं और उसे कसौटी पत्थर पर कसते हैं। यदि वह खालिस नहीं हुआ होता, तो एक दो बार फिर तपाते हैं। बहुधा तीन चार आंचों से उद्देश्य सिद्ध हो जाता है।

इस तरह से भी परीक्षा करते हैं। दो तोला खालिस सोना लेते हैं और दो तोला तपाया हुआ सोना। दोनों सोनों के बराबर तौल के बीस बीस पत्र बनाते हैं। फिर मसाला सौंद कर आँच देते हैं। तत्पश्चात उनको धोकर तौलते हैं। यदि दोनों प्रकार के वर्क तोल में बराबर होते हैं तो यह उनके खालिस होने का लक्षण होता है।

दसवां, गुदाज़गर पुख़्ता[2]—वह खालिस सोने के वरकों को गलाता है और पहली रीति से सलाखे बनाता है। १०० सोने की मोहरों में उसकी मजदूरी ३ दाम होती है।

ग्यारहवां, ज़र्राब[3]—वह अपनी दृष्टि के बल से सोने, चांदी और तांबे की सलाखों से सिक्कों के अनुरूप गोल टिकियां काटता है। सोने की १००

१—तीन बार तपाई या ताई हुई धातु।
२—पक्की धातु गलाने वाला।
३—टिकिया बनाने वाला।

मोहरों की टिकियां तैयार करने पर वह २१ दाम और १ १/४ जीतल मजदूरी पाता है। यदि चांदी की सलाखों से १००० रुपए की टिकियां बनाता है, तो ५३ दाम ८ ३/४ जीतल मजदूरी लेता है। यदि उतनी ही चांदी से चवन्नियों की टिकियां तैयार करता है तो उसकी मजदूरी मे २८ दाम और बढ़ जाते हैं। १००० तांबे के दाम बनाने मे २० दाम मजदूरी लेता है। उतने ही वज़न के तांबे मे आधे दाम और चौथाई दाम की टिकियां काटने में २५ दाम पाता है; अष्टांश दाम बनाने मे, जिसको दमड़ी कहते है, ६६ दाम लेता है।

ईरान और तूरान मे ज़र्राब, बिना सांचे की निहाई के सिक्के की नाप भर टिकियां नहीं काट सकते, हिन्दुस्तान के गुणी बिना उसके इस उत्तमता से कार्य करते है कि बाल भर फर्क नहीं पड़ता; और यह बड़े आश्चर्य की बात है।

बारहवां, मोहरकन वह सिक्के के नक़्शों को फौलाद और उसी प्रकार की दूसरी धातुओं पर खोदता है। उसके आकार रुपए और अशरफी आदि पर बन जाते है। आज कल इस काम पर मौलाना अली अहमद देहलवी[1] (दिल्ली निवासी) है। किसी देश मे उसका सानी नहीं बतलाया जाता। वह फौलाद पर तरह तरह की ऐसी सुन्दर लिपियां लिखते है, जो प्रसिद्ध सुलेखाचार्यों के कतओं[2] की बराबरी करती है। वह **यूज़बाशी**[3] के पद पर है। इनके दो प्यादे टकसाल में रहते है, जिन मे से हर एक का वेतन ६०० दाम है।

तेरहवां, सिक्कची--टिकियों को दो ठप्पों के बीच मे रखता है। हथौड़े के बल से उनमे दोनो तरफ नक़्श हो जाते है। उसकी मजदूरी १०० सोने की मोहरों के ठप्पा करने मे १ दाम २/५ जीतल होती है, चांदी के १००० रुपयों के सिक्कों के नक़्श करने मे ५ दाम ६ १/५ जीतल, और १००० रुपए की रेजगारी बनाने मे १ दाम ३ जीतल और बढ जाते है। तांबे के १००० दाम बनाने मे उसकी मजदूरी ३ दाम होती है; २००० आधे दाम और ४००० चौथाई दाम तैयार करने मे ३ दाम १८ ३/४ जीतल, और ८००० अष्टांश दाम बनाने मे १० १/२ दाम। सिक्कची अपनी मजदूरी का छटा भाग घनहा को देता है, क्योंकि उसके लिये पृथक मजदूरी नियत नहीं होती।

१—इसी ग्रंथ का २० वॉ आईन देखिये।

२—सुलिखित वाक्य।

३—सौ आदमियों का सरदार। खास अहदी इस फ़ौजी पद पर पहुंचते थे। यूज़बाशी को ५०० से ७०० रु० तक मासिक वेतन मिलता था। इस का वर्णन द्वितीय ग्रंथ के तीसरे आईन मे है।

चौदहवां, सब्बाक—साफ की हुई चांदी की टिकियां बनाता है और १००० रुपए भर के लिए ५४ दाम लेता है।

चांदी की सफ़ाई—उसमें सीसा, जस्त और तांबे का मेल होता है। ईरान और तूरान में चांदी की सब से ज्यादा खराई को **दहदही** कहते हैं और हिन्दुस्तानी सर्राफ़ उसे **बीस्तबिस्वा** (बीस बिस्वा) कहते हैं। मिलावट के अनुसार उसका दर्जा घट जाता है। पांच से अधिक कम दर्जे की चांदी नहीं बनाई जाती है। दस दर्जे से कम वाली चांदी पर कोई ध्यान नहीं देता। अनुभवी परखिये मिलावटी चीज के रंग से उसके न्यूनाधिक अंश को जान लेते हैं। रेती से रगड़ कर या छेद करके, उसका भीतरी हाल मालूम कर लेते हैं, और आग में तपाकर और पानी में बुझाकर उसका खरापन जान लेते हैं। कालेपन में सीसा, ललाई में तांबा, मटमैली सफ़ेदी में जस्त और सफ़ेदी में चांदी क्रमश अधिक मिली रहती है।

चांदी को शुद्ध करने की विधि।

एक गढ़ा खोदते हैं उसमें बिनवों कंडे का थोड़ासा चूरा डालते हैं। फिर उसे बबूल की लकड़ी की राख से भरते हैं और तर करके रकेबीदार बना लेते हैं। मिश्रण (खोटी चांदी) उसी में रख देते हैं और उसी के अनुसार सीसा मिला देते हैं। पहले सीसे का चतुर्थांश चाँदी के ऊपर रखकर कोयला भरते हैं और धौंकनी से धौंक कर गलाते हैं। बहुधा यह क्रिया चार बार की जाती है। धातु के खालिस हो जाने की पहचान यह है कि गलाया हुआ पदार्थ साफ चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है और किनारों की ओर से जमने लगता है। जब जमते जमते बीच में भी कठोर होने लगता है तो उस पर पानी के छींटे देते हैं। उस समय उस से मढे के सींग की तरह लपट उठती है। तब उसकी थकिया जम जाती है और चांदी पूर्णतया शुद्ध हो जाती है। यदि यह थकिया फिर गलाई जाय, तो हर तोले में आधी रत्ती माल जल जायगा, अर्थात सौ तोले में ६ माशा २ रत्ती माल घट जायगा। चांदी एवं सीसा मिली हुई वह राख मुर्दाशख के सदृश हो जाती है, हिन्दी में उसे **कहरल**[1] कहते हैं और फारसी में **कोहना**; इसका प्रयोग आगे बतलाया जायगा। इसके पहले कि जर्राब उसकी टिकियां बनावे, प्रति सौ

१—इसका उच्चारण खरल भी होता है।

तोले शुद्ध किये हुये माल में से ५ माशे ५ रत्ती खालसा के लिये निकाल लिये जाते हैं। फिर पारखी साफ टिकियों पर न्यायतुला के ठप्पों से निशान लगाता है जिस से वह बदलने न पावे।

प्राचीन काल मे चांदी की खराई जानने के लिए भी लोग बानवारी क्रिया का प्रयोग करते थे, परन्तु अब निम्नलिखित साधन के उपस्थित होने के कारण वे उसमे प्रवृत्त नही होते। यदि १०० तोले शाही चांदी, जिसका इराक और खुरासान मे चलन है और लारी एवं मिसकाली चांदी जो तूरान मे प्रचलित है, मे से ३ तोले १ रत्ती निकल जाय, और उतनी ही तौल की फिरंगी तथा रूमी नारजील की चांदी मे से, एवं गुजरात और मालवा की महमूदी और मुजफ्फरी चांदी में से १३ तोले ६$\frac{१}{२}$ माशे घट जाय, तो इन चांदियों की खराई शहंशाही चांदी के खरेपन मे मिल जायगी।

पन्द्रहवां, कुर्सकूब—साफ चांदी को तपा कर इतना कूटता है कि उसमे सीसे की गंध तक नहीं रहती। १००० रुपए की चांदी की मजदूरी ४॥ दाम है।

सोलहवां, चाशनीगीर—खालिस किये हुये सोने और चांदी की जांच करता है और निम्नलिखित रीत्यनुसार शुद्ध होने की सनद देता है। वह २ तोले सोना लेता है, और ८ वर्क बनाता है। फिर पूर्वोक्त विधि से मसाला चुपड़ कर उनको तपाता है। हवा से बचाये रखता है और फिर धोकर गलाता है। यदि वे तौल मे कम नहीं होते तो वह शुद्ध जानता है। प्रधान पारखी उनको कसौटी पर कसकर निजको और दूसरों को सन्तोष देता है। उपर्युक्त माल की जांच कराई वह १$\frac{२}{५}$ दाम लेता है। चांदी की परीक्षा करने के लिए १ तोला चांदी लेता है, और उतने ही सीसे के साथ उसे हड्डी की घरिया में गलाता है, और इतनी आंच देता है कि सीसा बिल्कुल जल जाता है। फिर उसे पानी मे बुझाकर इतना कूटता है कि सीसे का संसर्ग नहीं रहता। इसके बाद नई घरिया मे गलाकर तौलता है। यदि चांदी तीन चावल कम होती है तो यह पूर्ण खरे होने की पहचान होती है; अन्यथा वह उसे फिर गलाता है, यहां तक कि वह उसी दर्जे को पहुँच जाती है। इतनी चांदी जांचने की मजदूरी ३ दाम ४$\frac{१}{२}$ जीतल होती है।

सत्रहवां, न्यारिया—खाके-खलास (सलोनी) इकट्ठी करके दो दो सेर धोता है। सोना भारी होने के कारण तह मे बैठ जाता है। धोई हुई राख को हिन्दी मे **कुकरा** कहते हैं। उसमे भी कुछ सोना मिला रहता है। दूसरी क्रिया

द्वारा, जो आगे बतलाई जायगी, सोना निकाला जाता है। नीचे बैठे हुये मिश्रण में पारा मिलाकर मलते हैं। प्रति सेर में ६ माशे सीसा प्रयोग करते हैं। पारा प्रेम के आकर्षण से सोने को अपने में खींच लेता है। उसको शीशे के बर्तन में डालकर आंच देकर सोना अलग कर लेते हैं। उतने परिमाण की राख से सोना निकालने में न्यारिया को २० दाम २ जीतल मिलते हैं।

कुकरे की क्रिया—कुकरे के बराबर **पुनहर** मिलाते हैं, और **रसी** को गाय के गोबर में सानते हैं। फिर पहले मिश्रण को पीस कर दूसरे में सोद देते हैं: और उसके दो दो सेर के गोल बनाकर कपड़े पर सुखा लेते हैं।

पुनहर की क्रिया—एक गढ़े को बबूल की राख से इस प्रकार भरते हैं कि एक मन सीसे के प्रयोग करने में राख की ऊंचाई ६ अंगुल रहती है। उसका पेंदा बराबर करके सीसा रख देते हैं और कोयले चुनकर उसे गलाते हैं। फिर कोयले हटाकर उस पर काँटे दार दो मिट्टी के तख्ते लगा देते हैं। धौंकनी की तरफ का सूराख बन्द करके दूसरी ओर का छेद खुला रखते हैं। पर इस छेद को भी एक ईंट से उस समय तक ढांपे रहते हैं, जब तक कि राख सीसे को बिलकुल नहीं सोख लेती। कर्मचारी उस ईंट को क्षण क्षण उठाकर सीसे का हाल मालूम करते रहते हैं। सीसे के उपर्युक्त परिमाण के लिए वे चार माशे चांदी राख में मिला देते हैं। राख को पानी से ठंढा कर लेते हैं, उसी को **पुनहर** कहते हैं। उतने में से २ सेर सीसा जल जाता है और राख ४ सेर बढ़ जाती है। सब सामान तौल में १ मन २ सेर होता है।

रसी—एक प्रकार का तेज़ाब है, जिसको सज्जी और शोरा-मिट्टी से बनाते हैं।

यत: पुनहर और रसी का हाल निवेदन कर चुका, अब मुख्य विषय पर आता हूं और कुकरे की क्रिया पूर्ण करता हूं। तन्दूर की तरह एक भट्ठी बनाते हैं, जिसके दोनो मुँह छोटे, पेट बड़ा और ऊंचाई डेढ़ गज होती है। उसकी पेंदी में छेद करके भूमि में एक गढ़ा खोदते हैं और उसी पर उसे रखते हैं। इस भट्ठी को कोयलो से इस प्रकार भरते हैं कि वह चार अंगुल खाली रहती है। फिर दो धौंकनियों से आग जलाते हैं। जब आग दहकने लगती है तो उन गोलों में से एक एक को तोड़कर उस अग्निकुंड में डालते और गलाते हैं। सोना, चांदी, तांबा तथा सीसा छिद्र द्वारा उस गढ़े में आ जाता है। उसकी बची हुई सामग्री बाहर निकाल लेते हैं, और मुलायम बनाकर धोते हैं, सीसा अलग निकल आता

है। इसी प्रकार राख इकट्ठी कर लेते हैं और दूसरी क्रिया द्वारा उससे भी लाभ उठाते हैं। धातु (खनिज) को गढ़े से निकाल कर पुनहर की तरह गलाते हैं। सीसा राख में मिल जाता है, जिसमें से ३० सेर निकल आता है और १० सेर जल जाता है। सोना, चांदी, तांबा एवं थोड़ा सीसा अपनी हालत में (पिण्ड में) रह जाता है, उसको **बुगरावटी** कहते हैं, और कुछ लोग **गुबरावटी** पुकारते हैं।

बुगरावटी की क्रिया—एक गढ़ा खोदते हैं, और उसमें सौ तोले बुगरावटी के लिए आध सेर बबूल की राख भरते हैं। उस राख को रकेबीदार बनाते हैं और बुगरावटी उसमें भर देते हैं, साथ ही १ तोला तांबा और २५ तोले सीसा उसमें बढ़ा देते हैं। फिर कोयला भर कर ईंटे ढक देते हैं। जब मिश्रण गल जाता है, तो कोयला और ईंटे हटा कर बबूल की लकड़ी यहाँ तक जलाते हैं कि तांबा और सीसा राख में मिल जाता है, और मिला हुआ सोना चाँदी अलग हो जाता है। उस राख को भी कहरल्ल कहते हैं। उससे सीसा और तांबा निकल आता है, जिसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी।

आईन ८

सोने से चाँदी अलग करने की रीति।

मिश्रित सोना चांदी छः बार गलाते हैं, तीन बार तांबे के साथ और तीन बार छाछिया गंधक के साथ। एक तोला मिश्रण के लिए एक माशा तांबा और दो माशे दो रत्ती गंधक लेते हैं। पहले, तांबे के साथ गलाते हैं, फिर गंधक के साथ। यदि मिश्रण १०० तोले हो तो तांबा भी १०० माशे प्रयोग करते हैं। पहले उसमें ५० माशे मिलाकर गलाते हैं, शेष आधे को फिर दो बार (पच्चीस पच्चीस माशे मिला कर) टिघलाते हैं। गंधक को भी इसी क्रम से गलाते हैं। उस मिश्रण (सोना चांदी) को चूरा चूरा करके घरिया में भरते हैं और ५० माशे तांबा मिला कर गलाते हैं। उसके पास ठंडे पानी से भरा हुआ एक बर्तन रख लेते हैं। उसके ऊपर एक खस का कूंचा बिछा देते हैं। गलित धातु उसी पर उड़ेल देते हैं और एक लकड़ी से चलाते रहते हैं, जिससे उसकी थकिया नहीं बँधने पाती है। फिर उन टुकड़ों को अन्य आधे मसाले के साथ मिला कर घरिया में भरते

और गलाते है। जब माल पिघल जाता है तो उसे उठा कर साये मे सुखाते हैं, जिससे वह ठंढा हो जाता है। मिश्रण के प्रति तोले के लिए दो माशे दो रत्ती गंधक अर्थात सौ तोले मिश्रण के लिए १$\frac{3}{8}$ सेर गंधक इस्तेमाल करते है। तीन बार उसी प्रकार क्रिया करते है। फिर उस पर हलके सफेद रंग की राख दिखलाई पड़ती है। वह असल मे चॉदी है जो इस प्रकार निकलती है। उसको उठाकर अलग रख छोड़ते है, उसकी क्रिया आगे बतलाई जायगी। जब मिश्रण तांबे और गंधक के साथ तीन तीन बार गलाया जा चुकता है तो शेष भाग सोने का थक्का हो जाता है। पंजाबी भाषा मे उसे **कैल** कहते है, और दिल्ली प्रदेश मे **पिजर**। यदि मिश्रण मे सोना अधिक मिला होता है तो साधारणतया ६$\frac{1}{2}$ बान का निकलता है, परन्तु अधिकतर ५ बान प्रत्युत ४ ही बान का निकला करता है।

उसकी खराई बढ़ाने के लिए इन दो क्रियाओ मे से एक का करना आवश्यक है। चार सौ तोले खरे सोने मे इस सोने के पचास तोले मिलाते है और **सलोनी** क्रिया द्वारा उसकी पूर्ति करते है या **अलोनी** क्रिया से काम चलाते है। **अलोनी**, दो हिस्सा जंगली गोबर और एक हिस्सा शोरा नमक का मिश्रण है। पिजर की सलाखे तैयार करके पत्र बनाते है। हर पत्र तौल मे डेढ़ तोले से कम नही होता, पर चौड़ाई मे उससे अधिक होता है जितना चौड़ा कि सलोनी के लिए बनाया जाता है। उनको सफेद और काले तिलो के तेल से चुपड़ कर मसाला लगाते है। फिर हर बार मसाला लगाने से उसे दो बार मंद मंद आँच से तपाते है। इसी प्रकार तीन चार बार सोदते और तपाते है। यदि इससे भी अधिक खरा चाहते है तो उक्त क्रिया को कई बार करते है, यहाँ तक कि वह ६ बान का हो जाता है। उसकी भी राख रख लेते है, वह **कहरल** के समान होती है।

आईन ६।

राख से चांदी निकालने की रीति।

अलोनी क्रिया के पहिले और पीछे जो राख और मैल जमा किया है उसका दुगना खालिस सीसा मिलाकर उसे घरिया मे भरते है, और कोयलों की आग

पर रख कर एक पहर (३ घंटे) भर जलाते हैं। जब ठंढा हो जाता है तो सब्बाकी[१] के तरीके से साफ कर लेते हैं। इसकी भी राख कहरल होती है। सलोनी क्रिया अन्य रीतियो से भी की जाती है जोकि गुणियो से छिपी नहीं हैं।

अठारहवां, पनीवार—कहरल गलाकर चांदी को तांबे से अलग करता है। एक तोला चांदी मे उसकी मजदूरी १½ दाम होती है। लाभ प्राप्ति के उपलक्ष मे कृतज्ञता प्रकाशन के रूप मे वह ३०० दाम प्रति मास दीवान को देता है। कहरल को चूरा चूरा करता है और एक मन (कहरल) मे १½ सेर सुहागा और तीन सेर सज्जी कूटकर खमीर बनाता है। फिर उक्त भट्ठी मे सेर सेर भर डालता और गलाता है। चांदी मिला हुआ सीसा उस गढ़े मे आजाता है और सब्बाकी क्रिया द्वारा साफ हो जाता है। जो सीसा इस से अलग होकर मिट्टी मे मिल जाता है वह फिर पुनहर हो जाता है।

उन्नीसवां, पैकार—सलोनी और कहरल शहर के सुनारो से खरीदता है, और टकसाल घर मे गलाता एवं सोने और चांदी से लाभ उठाता है। एक मन सलोनी में १७ दाम और एक मन कहरल मे १४ दाम खालसा को देता है।

बीसवां, निचुई वाला—चांदी मिले हुये तांबे के पुराने सिक्के गलाता है, और १०० तोला चांदी मे ३½ रु० दीवान को देता है। जब चादी पर सिक्का करता है, तो उसका नियत कर पृथक चुकाता है।

इक्कीसवां, ख़ाक शोई—जब माल के स्वामी विभिन्न प्रकार से, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, चांदी और सोना ले लेते है, तो खाकशोई टकसाल झाड़ कर राख घर ले जाता है, और उनको धो कर लाभ उठाता है। बहुतेरो का इस पेशे से उद्यम चमक जाता है। लाभ उठाने के उपलक्ष मे कृतज्ञता प्रकाशनार्थ वह राज्य को प्रतिमास १२½ रुपए अदा करता है।

टकसाल के सभी पेशेवर राज्य को प्रति १०० दामो की आय पर, ३ दाम प्रतिमास कर स्वरूप देते है।

१—इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

आईन १०

अचल राज्य के मुद्रा¹।

जिस प्रकार सम्राट् के ध्यान देने से सोने और चाँदी ने अधिकाधिक शुद्धता प्राप्त की, उसी प्रकार मुद्रा की विपुल आकृतियों से भी उनका मुख

१ मुद्रा—भारतवर्ष में मुद्रा बनना कब प्रारम्भ हुआ यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। परन्तु पुरातत्वविदों के मतानुसार 'भारतवासी बहुत ही प्राचीन काल से विनिमय के लिए धातुओं के बने हुये सिक्कों का व्यवहार करते आये हैं। हिन्दुओं, बौद्धों और जैनों के सर्व प्राचीन धर्म-ग्रन्थों से भी पता चलता है कि प्राचीन-काल में भारत में सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों का बहुत प्रचार था। सोने के सिक्कों का नाम सुवर्ण या निष्क, चांदी के सिक्कों का नाम पुराण वा धरण और तांबे के सिक्कों का नाम कार्षापण था (प्राचीन मुद्रा ले० राखालदास बनर्जी)।

ऋग्वेद संहिता में निष्क का उल्लेख तीन स्थानों पर है, पहले, दूसरे और आठवें मण्डल में। पहले में ऋषि कक्षिवान् ने सिन्धु नद के तटवासी राजा भावयव्य से १०० निष्क १०० घोड़े और १०० सांड उपहार में लिये थे, (शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कांछतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम्। शतं कक्षीवां असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान। ऋक्० मं० १ सू० १२६ मंत्र २। इस पर सायणाचार्य का भाष्य इस प्रकार है - नाधमानस्य स्वीकर्तव्यमित्युच्चैर्याचमानस्य असुरस्य धनानां निरसितुः दानशीलस्य राज्ञः स्वतेजसा दीप्यमानस्य स्वनयस्य निष्कान् आभरण विशेषान् इयत्ताविशेषविशिष्टानि वा सुवर्णानि शतं शतं सङ्ख्याकानि शत सहस्रमित्यपरिमित वचनं प्रयच्छितान् सद्यः प्रार्थनानन्तरमेव कक्षीवानहं आदं आत्तवानस्मि स्वीकृत वानस्मी त्यर्थः। तथा प्रयतान् शुद्धान् लक्षणोपेतान् अश्वान्वेगवतः सद्यस्तान् हयान् शतं शतं सङ्ख्याकान् आदं आत्तवान्। तथा गोनां पुगव ता बलीवर्दानामित्यर्थः। उत्तर मंत्रे स्त्री गवीनामभिधानात्। तेषां शतं आदम् एवं प्रदाता राजा दिवि द्युलोके श्रवः कीर्ति अजरं शाश्वती अनन्तान विस्तारितवान गवादि प्रतिगृहीतान स्वर्गे कीर्तिमकरवमित्यर्थः)। दूसरे स्थल में रुद्र का वर्णन है जिसमें ऋषि गृत्समद ने एक माला का उल्लेख किया है जो निष्कों का बना हुआ था, (अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति। ऋक्० मण्डल २ सू० ३३ मंत्र १०। इसका अर्थ सायणाचार्य के शब्दों में इस प्रकार है—हे रुद्र! त्वं अर्हन् अर्हा योग्य एव सन् सायकानि शरान् धन्व च धनुश्च बिभर्षि धारयसि तथा अर्हन्नेव यजतम् यजनीयं पूजनार्थं विश्वरूपं बहुविधरूपयुक्तं निष्कं हारं बिभर्षि तथा अर्हन्नेव इदं विश्वं सर्वं अभ्वं महत्त्वमेतत् अति विस्तृतं जगत् दयसे रक्षसि देव रजणे। हे रुद्र! त्वत्त्व-त्तोऽन्यत् किञ्चित् ओजीयः ओजस्वितरं बलवत्तरं नवाअस्ति। न खलु विद्यते। अतस्त्वमेवोक्तव्यापारेषु योज्य इत्यर्थः। इसी प्रकार "निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा

द्युतिमान हुआ। धनागार विभूषित होगया और जनता को सुख प्राप्त हुआ। मैं उसका कुछ वृत्तान्त वर्णन करता हूं और उनकी विलक्षणताएं चित्रित करता हूँ।

दुहितर्दिवः, त्रिते दुःष्वप्न्य सर्वमाप्त्ये परिदद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ऋक्० मण्डल ८ सूक्त ४७ मन्त्र १५, है। इसका अर्थ सायणाचार्य ने इस प्रकार किया है—हे! दिवो दुहितरुषो निष्कवा घ आभरणविशेषं वा कृणवते कुर्वते स्वर्णकाराय यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं स्वर्णकारेण निर्माणसमये दृष्टमित्यर्थः। घेति पूरणः वा शब्दश्चार्थेवा अथवा स्रजं माल्यं कृणवतेकुर्वाणेइत्यर्थः। तस्मिन्नपि मालाकारे मालानिर्माणसमये यत् दुःष्वप्न्यं दृष्टं तदुभय विषय स्वप्न आप्त्ये अपांपुत्रे त्रिते वर्तमान परिददमसि परिदद्मो वयं त्रिताः परित्यजामेत्यर्थः। अथवा त्रिते मयि यद्दुःष्वप्न्य दृष्टं तत्स्वर्णकाराय मालाकाराय वा परिददमसि अस्मत्तोपिनिष्कृष्य तयोरुपरि स्थापयामः। वो युष्माकमूतयो रक्षणानि अनेहसः अपापानि अनुपद्रवाणि च ऊतयो वो युष्माकं रक्षणानि सुऊतय. शोभन लक्षणानि पुनरुक्तिरादरार्था। इन ऋचाओं में निष्क शब्द आना तथा उसका मुद्राभरण के रूप में प्रयोग होना प्रकट करता है कि ऋग्वेद के समय में निष्क का प्रचार था। कितने ही विद्वानों का मत है कि वैदिक काल में राजा लोग सोने के निशेष परिमाण में बराबर टुकड़े करा लेते थे। यज्ञ में उन्हीं का दक्षिणा में देते थे वही "निष्क" कहलाते थे। उन पर यज्ञस्तूप आदि भी बनाये जाते थे। उनको गूथ कर हार बनाते थे तथा ऋषि और ब्राह्मणादि आज कल की मोहरों के हार हमेलों की तरह पहनते थे। इन मंत्रों में आभूषण से आशय निष्कों के हार से है, और निष्क से आशय विनिमय के काम में आने योग्य मुद्रा से है। यह सब स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। अतः निष्क उतनाही प्राचीन है जितना कि ऋग्वेद।

"शतपथ ब्राह्मण" में एक स्थान पर हिरण्यं सुवर्णं शतमानम् (अर्थात् पीले रंग की 'शतमान' नामक सुवर्ण मुद्रा) का उल्लेख है। यह तोल में एक पल था। किसी किसी विद्वान् के मत से निष्क का दूसरा नाम शतमान है।

मनुस्मृति के आठवे अध्याय (श्लोक १३१-१३८) में पुराने मुद्रों का मान इस प्रकार दिया हुआ है। मनु ने रोशनदान के प्रकाश में उड़ते हुये दिखलाई पडने वाले ज़र्रों को सबसे छोटा माना है। उनको त्रसरेणु कहते हैं।

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा
३ लिक्षा = १ राई
३ राई = १ सफ़ेद सरसों
६ सरसों = १ मझला जो
३ जो = १ कृष्णल रत्ती
५ कृष्णल = १ माष
१६ माष = १ सुवर्ण
४ सुवर्ण = १ पल
१० पल = १ धरण
२ कृष्णल = १ रौप्य (चाँदी का) माषक
१६ माषक = १ रौप्य धरण या पुराण

तांबे के कर्ष भर के पण (पैसे) का नाम 'कार्षापण" है।

१० धरण = १ चांदी का शतमान
४ सुवर्ण = १ निष्क।

निष्क का मान भिन्न भिन्न समयों में "शब्द सागर" के अनुसार इस प्रकार रहा है:—

१ निष्क = १ कर्ष (१६ माशे)
१ ,, = १ सुवर्ण ,,
१ ,, = १ दीनार ,,

स्वर्ण मुद्रा।

(१) सहँसा—एक गोल मुद्रा है; तौल १०१ तोले ६ माशे ७ रत्ती;

१ निष्क = १ पल (४ या ५ सुवर्ण)
१ ,, = ४ माशे
१ ,, = १०८ या १५० सुवर्ण

सुवर्ण भी एक सिक्का था। बौद्धों के त्रिपिटक में "पभुतम् हिरञ्ञ सुवरार्ण" एक पद है। इसमें हिरण्य और सुवर्ण दोनों शब्द आये है। हिरण्य से अमुद्रित सोने का और सुवर्ण से 'सुवर्ण' नामक सिक्के से तात्पर्य है।

जो लोग यह कहते है कि प्राचीन भारतीयों ने सिक्का बनाना विदेशियों से सीखा, वे भूल मे है। यह सब जानते है कि सन् ३२६ ईसा के पूर्व जब सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया था तो राजा आम्भि ने उपहार स्वरूप उसको चाँदी के बहुत से सिक्के, १००० भेडें और ३००० बैल दिये थे। ये सिक्के भारतवर्ष मे ही निर्मित हुये थे। इसके अतिरिक्त रोम के इतिहासज्ञ क्विन्टस कर्टियस के अनुसार सिकन्दर जब तक्षशिला पहुँचा था तो वहां के राजा ने उसको ८० टेलेण्ट के मूल्य का अङ्कित किया हुआ चांदी का टुकड़ा उपहार में दिया था (Coins of Ancient India)। यह अङ्कित मुद्रा भारतवर्ष का ही था। सर अलेक्ज़ण्डर कनिङ्घम तथा रैप्सन का मत है कि प्राचीन भारत के सिक्के इसी देश के तोल के अनुसार बने हैं, क्योंकि इनका आकार प्रकार संसार की अन्य जातियों से भिन्न है।

मुद्रों के निर्माण काल के अन्वेषण के सम्बन्ध मे, तक्षशिला की खुदाई में पुरातत्व विभाग के प्रधान अधिकारी सर जान मार्शल ने जो बहुत से पुराण तथा चाँदी के कार्षापण निकाले हैं, वे दूसरे दियादात के समय के हैं। दियादात का समय, ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के अन्तर्गत माना जाता है। पादरी लोवेनथाल के मतानुसार दक्षिण भारत में पुराणों का चलन बहुत प्राचीन काल से रहा है और वे तीसरी शताब्दी तक चलते रहे हैं। अनेक पुरातत्वविदों के मतो का सार यही है कि भारतवर्ष मे मुद्रा का चलन ईसा के १००० वर्ष पूर्व से चला है। पर, यह मत अन्तिम और निश्चित है, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मोहनजोदाड़ो (ज़िला लरकाना, सिन्ध) तथा हरप्पा (ज़िला माण्टगुमरी, पंजाब) में जो खुदाई हुई है, उसमें बड़ी बड़ी विलक्षण वस्तुएं निकली है, यथा—मिट्टी के बर्तन, खिलौने, नीले कांच और लेई तथा सीपी की चूड़ियां, चाकू, चक़माक की कीलें, पांसे और शतरंज के मुहरे, पत्थर का अंगूठियों का अद्भुत अनुक्रम, लाल पत्थर और सीप आदि का बना हुआ हार और नए नमूने के सिक्के या सील मुहरें आदि।

मोहनजोदाड़ो की सभ्यता ईसा से ३००० या ३५०० वर्ष पहले की मानी जाती है। इससे यह सिद्ध ही होगया कि भारतीय आज से ५००० वर्ष पहले ऐसी वस्तुएं तैयार करते थे जो संसार के लिए अनोखी थीं। इनमें सब से अपूर्व वस्तु सिक्के या निशान है जिनके सम्बन्ध में "इण्डियन हिस्टरिकल क्वार्टरली" में लिखा है कि भारतवर्ष के बाहर दूसरे प्राचीन स्थानों में जितनी सीलें अनुसन्धान में अभी तक पाई गई हैं उनमें से कोई भी आकार, प्रकार तथा चित्रण में इन सीलों के समान नहीं हैं (None of the seals discovered

मूल्य १०० लाल जलाली। उसके एक ओर, बीच में, सम्राट् का नाम लिखा हुआ

in other ancient sites outside India bear resemblance to these seals in shape devices or pictographs The Indian Historical Quarterly, March 1932 P 131)। उन मीलों पर जो लेख है वे संसार की सभी लिपियों से भिन्न लिपि मे लिखे हुये है। विद्वान उनको पढ़ रहे हैं। संभव है उनमें तथा अन्य स्थानों की खुदाई में मुद्रा निकल आवे।

प्राचीन मुद्रा' के अनुसार खुदाइयों मे सोने के पुराने निष्क, सुवर्ण अथवा पल नामक सिक्के अभी तक कहीं नहीं मिले है, किन्तु चाँदी के चौकोर और गोल लाखों सिक्के प्राप्त हुये है। पुरातत्वविदों के अनुसार यही प्राचीन पुराण वा धरण है। ये कदाचित् चाँदी के पत्रों को काट कर बनाये गये है। इनके पश्चात् ही अङ्क चिह्न युक्त (Punch marked) सिक्कों का चलन चला है।

विदेश वालों में यूनानियों के जो सोने चाँदी तथा तांबे के सिक्के मिले है, उनसे मालूम होता है कि वहाँ के पचीस शासकों ने अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब पर शासन किया था। इन पर प्राचीन ग्रीक लिपि के लेख के साथ साथ खरोष्ठी लिपि में उसका अनुवाद दिया हुआ है। जिससे एक दूसरी की सहायता से दोनों लिपियाँ पढ़ी जा सकती है।

क्षत्रप वंशी राजाओं के प्राप्त सिक्के कलदार चवन्नी के बराबर है। उन पर क्षत्रप या महाक्षत्रप का नाम, उपाधि और संवत् दिया हुआ है। इन सिक्कों से दो दर्जन के लगभग राजाओं का पता चलता हैं। इन से यह भी मालूम हुआ है कि राजा के मरने पर पुत्र के बजाय क्रमशः उसके भाई राज्य करते थे। अन्तिम भाई के मरने पर जेठे भाई का लड़का राज्य का अधिकारी होता था।

कुशन वंशियों के सिक्कों मे उनका शीत प्रधान देश का निवासी होना सिद्ध होता है। राजतरङ्गिणी के अनुसार वे तुर्किस्तान के रहने वाले थे। इसी लिए शीत निवारणार्थ उनके शरीर पर लबे लबादे आदि देख पड़ते है। वे शिव, बुद्ध और सूर्य आदि के उपासक थे। यज्ञ प्रेमी होने के कारण राजे अग्निकुण्ड मे आहुति देते हुये दिखलाई पड़ते है।

गुप्त वंश के सिक्के सर्वोत्तम है और वे सोने, चांदी तथा तांबे के प्राप्त है। इन में से किसी मे एक अश्व यज्ञ स्तम्भ से बंधा हुआ है जो दक्षिणा देने या अश्वमेध यज्ञ की स्मृति दिलाने के लिये है। दूसरे प्रकार के सिक्कों मे राजा बाजा बजा रहा है। तीसरे प्रकार के सिक्कों मे राजा तीर से शेर का शिकार कर रहा है। इस वंश के समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त आदि ने संसार भर में सब से पहले अपने सिक्कों पर छंदोबद्ध लेख लिखवाये थे। इसी प्रकार अन्य वंशों के सिक्कों का भी विवरण जानना चाहिये।

मध्यकाल के भारतीय सिक्कों पर विदेशी सिक्कों का भी काफ़ी प्रभाव पड़ा था। कितने सिक्के तो उनकी हूबहू नकल है। नकल बुरी बात नहीं है यदि उसका उपयोग समझदारी से किया जाय, किन्तु यहाँ कई सिक्कों की नकल से बड़ा अनर्थ हुआ है। जैसे हूण तोरमाण ईरान का ख़जाना लूट कर भारतवर्ष में ले आया था। मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और राजपूताना आदि में कई सदियों तक उन्हीं सिक्कों की नकलें बनती रहीं। उनमें राजा की आकृति

है, और पाँचो तरफ की महराबो मे—"अस्सुल्तानुलआजम अलखाकानुलमोअज़्ज़म खल्लदअ अल्लाहुमुल्कहू व सुल्तानहू ज़र्ब दारुलखिलाफत आगरा"¹। उसके दूसरी

बिगडते बिगडते यहां तक खराब हुइ कि लोगों ने राजा का चेहरा गदहे का खुर समझ लिया और उन सिक्कों को गधीया या गदैया सिक्के कहने लगे। 'अजमेर बसाने वाले राजा अजयदेव चोहान तथा उनकी रानी सोमल देवी के चांदी के सिक्को के एक तरफ़ वही माना हुआ गधे के खुर का चिन्ह और दूसरी तरफ उनके नाम अंकित है।" किन्तु बापा रावल के स्वर्ण मुद्रा तथा प्रतिहार वंशी भोजदेव आदि के सिक्को से मालूम होता है कि उन्होंने किसी की नकल नही की, वरन वे पुरानी शैली के सिक्के बनवाते रहे।

'ये सिक्के अनेक राजवशो के जैसे ग्रीक्, शक, पार्थियन, कुशन, क्षत्रप, गुप्त, अर्जुनायन, ओदुंबर, कुनिन्द, मालव, नाग, राजन्य, योधेय, आंध्र, हूण, गुहिल चोहान, कलचुरि (हेहय), चंदेल, तोमर, गाहडवाल सोलंकी, यादव, पाल, कदंब आदि के तथा काश्मीर के भिन्न भिन्न वशो के, कांगडे, नेपाल, आसाम मणिपुर आदि के भिन्न भिन्न राजाओं के तथा अयोध्या उज्जैन, कौशांबी, तक्षशिला मथुरा, अहिछत्रपुर आदि नगरो के राजाओ के एवं मध्यमिका आदि नगरो के मिलते है।... भारतवर्ष के प्राचीन सोने, चाँदी और तांबे के सिक्को के कई बडे बडे संग्रह इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, और रूस आदि यूरोप के देशो में, कलकत्ता बम्बई आदि की एशियाटिक सोसायिटियों के संग्रहों में, तथा इण्डियन म्यूज़ियम् (कलकत्ता) बंगीय साहित्य परिषद् (कलकत्ता), लखनऊ म्यूज़ियम्, राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर), सरदार म्यूज़ियम् (जोधपुर), वाटसन म्यूज़ियम् (राजकोट) प्रिन्स आफ़ वेल्स म्यूज़ियम् (बंबई), मद्रास म्यूज़ियम, पेशावर म्यूज़ियम्, लाहौर म्यूज़ियम्, पटना म्यूज़ियम्, नागपुर म्यूज़ियम् आदि कई एक संग्रहालयों मे तथा कई विद्यानुरागी गृहस्थों के निजी संग्रहों मे विद्यमान है" (हिन्दी प्राचीन मुद्रा की भूमिका पृ० ७-८)।

मुसलमान बादशाहो के सिक्कों मे महमूद गज़नवी ने अपने सिक्कों पर बड़े विचित्र लेख लिखवाये। उनमे देव नागरी लिपि मे लिखा था—"अव्य अव्यक्तमेक मुहम्मद अवतार नृपति महमूद" तथा, 'अय टंक महमूद संवत ४१२।" ऐसा मालूम होता है कि उसके दरबार मे कुछ भारतीय पंडित थे, उन्होंने उसको पैगम्बर मुहम्मद का अवतार बना दिया था। ये सिक्के लाहोर के बने हुये थे। उन दिनों लाहोर, ग़ज़नी और नारायपुर मे टकसालें थीं इनके अतिरिक्त तीन चार जगहें और थी। काबुल मे उन दिनों कोई टकसाल न थी, (Thomas in Journal of Royal Asiatic Society Vol IX P 67, and Vol XVII P 157, quoted by C B Vaidya in his Downfall of India P 115)।

अन्य मुसलमान बादशाहों के सिक्के आसानी से मिल जाते है और उनका हाल भी लोगों को मालूम है, इस लिए उनके सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा गया है।

१—महाराजाधिराज, महाराजराजेश्वर, उसका राज्य और शासन सदा बना रहे, राजधानी आगरा मे अङ्कित किया गया।

तरफ़ बीच में पाक कलमा[1] और यह आयत—"[2]अल्लाहु यर्जु क़ो मँइयशाउ बिगैरे हिसाब" और उसके आसपास पहले चार[3] ख़लीफ़ों के नाम।

पहले, मौलाना मक़सूद मोहरकन ने, उपर्युक्त वाक्य खोदने में कार्य पटुता दिखलाई थी, उनके बाद मुल्ला अली अहमद ने निम्नलिखित वाक्य लिखकर विचित्रता प्रकट की। मुल्ला ने एक ओर—"[4]अफ़ज़लो दीनार यनफ़क़हू-अर्रजुलु दीनार यनफ़क़हू अला असहाबिही फ़ी सबीलिल्लाह" बढ़ा दिया; और दूसरी तरफ़—"[5]अस्सुसुलतानुलआली अलख़लीफ़तुलमुतआलो ख़ल्लदअअल्लाहु तआला मुलकहू व सुल्तानहू व अब्बदअ अदलहू व एहसानहू।"

पीछे से उसने सब इबारत साफ़ करदी, और कवि सम्राट् एवं दार्शनिक शेख़ फ़ैज़ी की दो रुबाइयाँ खोद दीं। सहँसा के एक ओर:—

"[6]खुर्शीद कि हफ्त बह्र अज़-ओ गौहर याफ़्त;
संगे सियह अज़ परतवे आं जौहर याफ़्त।
कान अज़ नज़रे तर बियंत ऊ ज़र याफ़्त;
वां ज़र शरफ़ अज़ सिक्कए शाह अकबर याफ़्त।"

और बीच में, "[7]अल्लाहु अकबर, जल्ल जलाल हू।" दूसरी ओर यह रुबाई:—

"[8]ईं सिक्का कि पीरायये उम्मीद बुअद;
बा नक़्श-दवाम-ओ नाम-ए जावीद बुअद।

१—"लाइलाह इल्लल्लिाह मुहम्मद रसूलल्लाह।"

२—ईश्वर, जिसको चाहता है, बिना हिसाब रोज़ी देता है।

३—बकर, उमर, उसमान और अली।

४—सबसे बढ़कर वह दीनार है, जिसको कोई व्यक्ति अपने धर्म बन्धुओं पर ईश्वर के मार्ग में व्यय करता है।

५—श्रेष्ठ सुलतान और उच्च पदस्थ ख़लीफ़ा; परमेश्वर सर्वदा उसका देश और उसकी बादशाही स्थिर रक्खे, और उसका इन्साफ़ और एहसान हमेशा बनाये रक्खे।

६—यह सूर्य है जिससे कि सात समुद्रों ने मोती पाया, काले पत्थर ने जिसकी द्युति से प्रतिभा प्राप्त की, जिसकी पोषण-दृष्टि से खान ने सोना पाया और सोने ने बादशाह अकबर के सिक्के से प्रतिष्ठा प्राप्त की।

[मध्यकाल के प्राकृतिक तत्ववेत्ताओं के मतानुसार, सूर्य के प्रभाव से ही धातु, मोती और बहुमूल्य मणियों का आविर्भाव होता है। देखिये तेरहवां आईन।]

७—ईश्वर महान है, उसका ऐश्वर्य महान है।

८—यह मुद्रा, जोकि आशा का भूषण है, अमिट आकारों और चिरस्थायी नाम के साथ स्थिर रहेगा। उसकी भागवानी के चिह्न के लिए इतना ही पर्याप्त है कि संसार में सूर्य का भेंट किया हुआ एक परमाणु चिरस्थायी रहेगा।

सीमाएसआदतश हमीं बस कि बदह,
यक जर्रा नजर करदए खुर्शीद बुअद।"

और स्थायित्व का चिह्न इलाही साल और महीना बीच में अंकित कर दिया।

(२) *इसी नाम और इसी शक्ल का एक और स्वर्ण मुद्रा है ११ तोले ८ माशे का। इसका मूल्य ग्यारह माशे वाली १०० गिर्द[१] मोहरें हैं। इस पर भी पहले वाले ही अङ्क हैं।*

(३) **रहस** - पूर्वोक्त दोनों मुद्राओं का अद्धा। कभी चार कोने का भी बनता है। उसके एक तरफ वही सौ मोहर वाली (सहँसा) के चिह्न हैं; और दूसरी ओर मलिकुश्शोअरा शेख फैजी की यह रुबाई :—

"[२]ईं नकदे रवाने गंजे शाहिशाही,
बा कौकबे इकबाल कुनद हमराही।
खुर्शीद बिपरवरिश अजां रू किबदह;
याबद शरफज सिक्कए अकबर शाही।"

(४) **आत्मा**—सहँसा का चतुर्थांश; गोल और चौकोण। इसके कुछ मुद्रों पर सहँसा के अंक हैं, और कुछ पर मलिकुश्शोअरा की यह रुबाई :—

"[३]ईं सिक्का कि दस्त-बख्त रा जेवर बाद,
पीराया-ए नोह सिपहो हफ्त अख्तर बाद।
जर्री नकदस्त कारअजां-चुं जर बाद,
दर दहर रवाँ बनाम शाह अकबर बाद।"

—और दूसरी ओर पहली रुबाई।

(५) **बिसत**—आत्मा की दोनों शक्लों के समान। इसे पहले सिक्के के पञ्चमांश के बराबर बनाते हैं।

इसी प्रकार सहँसा के आठवें, दसवें, बीसवें और पच्चीसवें, भागों के भी सिक्के हैं।

१—गोल।

२—यह शाही खज़ाने का प्रचलित मुद्रा, सौभाग्य नक्षत्र के साथ रहता है। सूर्य उसका पोषण इस लिये करता है कि वह संसार में अकबर शाही सिक्के द्वारा सुकीर्ति प्राप्त करे।

३—यह मुद्रा, जो भाग्य-कर का भूषण है, नौ आकाशों और सप्त ग्रहों का शृङ्गार हो। यह एक सोने का सिक्का है, इसमें सोने के सदृश कार्य सिद्ध हो। संसार में अकबर बादशाह के नाम से प्रचलित हो।

(६) **जुगुल**[1]—चौकोन, महंसा का पचासवां हिस्सा, मूल्य दो मोहर।

(७) **लाल जलाली गिर्द**—तौल और मूल्य मे दो गिर्द मोहरों के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर" और दूसरी ओर 'या मुईन'[2]।

(८) **आफ़ताबी**—गोल, तोल १ तोला ० माशे $४\frac{३}{४}$ रत्ती, मूल्य १२ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू," और दूसरी ओर महीना, इलाही साल और सिक्का लगाये जाने का स्थान।

(९) **इलाही**—गोल, तौल १२ माशे $१\frac{३}{४}$ रत्ती, इस पर आफताबी के समान लिखावट है। मूल्य १० रुपए।

(१०) **लाल जलाली चहार गोशा**—चौकोण, तौल और मूल्य इलाही के समान। एक ओर "अल्लाहो अकबर", दूसरी ओर "जल्ल जलाल हू"।

(११) **अदूल गुटका**—गोल, तौल ११ माशे, मूल्य ९ रुपए। एक ओर "अल्लाहो अकबर" दूसरी तरफ 'या मुईन'।

(१२) **मोहर**[3] **गिर्द**—गोल, तौल और मूल्य मे अदल गुटका के सदृश पर लिखावट और प्रकार की।

१—मूल ग्रन्थों मे इस शब्द के अक्षर-न्यास भ्रमात्मक है। इसे चुगुल भी पढ़ा जा सकता है। तौल और मूल्य में भी भिन्नता है। किसी किसी में लिखा है चौकोर चुगुल की तौल ३ तोले $४\frac{१}{४}$ रत्ती और मूल्य ३० रु० है। जो चुगुल गोल है, वह २ तोले ९ माशे भर की है। उसका मूल्य ११ माशे वाली ३ मोहरें अर्थात् २७ रु० है। लिखावट दोनो पर एक सी है।

२—हे सहायक!

३—अधिकतर सिक्के के रूप मे यही मोहर चलती थी। मोहर फ़ारसी भाषा का शब्द है। "हाब्सन् जाब्सन" के अनुसार यह 'मेहर' शब्द से, जिसका अर्थ सूर्य होता है, निकला है, इसका दूसरा अर्थ, छाते के सिरे पर का सुनहला छोटा घेरा, होता है। कुछ विद्वानो का मत है कि यह मुद्रा शब्द से जो सिक्का और छाप दोनो अर्थों मे व्यवहृत होता है, निकला है। राजपूताने मे सोने के सिक्को को पुराने समय से सुवर्ण, निष्क, शतमान, पल, दीनार, गद्याणक आदि कहते थे (राजपूताने का इतिहास जिल्द पहली)। भारतवर्ष के अन्य भागो मे भी सोने के सिक्को के करीब करीब ऐसे ही नाम थे। पर इनमे मुद्रा के अतिरिक्त कोई नाम ऐसा नही है, जिससे मुहर शब्द निकला हुआ जान पड़े। यद्यपि सोने के सिक्के और मुसलमान बादशाहो ने भी बनवाये थे, किन्तु मोहर नाम से उनकी अधिक ख्याति ग़ज़नी के गोरी बादशाहों के समय मे ही हुई। उन्होंने सन् १२०० ई० में १०० रत्ती (१७५ ग्रेन) की मोहर बनाई, और उसका मूल्य रुपए का दस गुना नियत किया। मुहम्मद तुग़लक़ की

(१३) **महराबी**[1]—तौल, मूल्य और लिखावट में मोहर गिर्द के समान।

(१४) **मुईनी**—चौकोर और गोल; तौल और मूल्य मे लाल जलाली और मोहर गिर्द के सदृश। "या मुईन" खुदा हुआ।

(१५) **चहार गोशा**—अंक और तौल आफ़ताबी के समान।

(१६) **गिर्द**—इलाही का आधा और वही अंक।

(१७) **धन**—लाल जलाली का आधा।

(१८) **सलीमी**—अदल गुटका का आधा।

(१९) **रबी**—आफ़तावी का चौथाई।

(२०) **मन**—इलाही और जलाली का चौथाई।

मोहर २०० ग्रेन की थी। कम्पनी की सरकार ने सब से पहली मोहर सन १७६६ ई० मे बनाई और उसका मूल्य १४ सिक्का रुपया करार दिया। आजकल भारतवर्ष मे सोने का सिक्का नहीं बनता है।

१—यह महराबी कदीम है। इसी तरह का एक और सिक्का था जिसको महराबी जदीद कहते थे। कदीम की तरह यह भी छे कोने का सिक्का था। इसकी तौल ११ माशे २ रत्ती थी। इसके एक ओर "अल्लाहु अकबर जल्ल जलाल हू", और दूसरी ओर "इमुरदाद इलाही जर्ब आगरा ४९" अंकित है। 'आईने अकबरी' मे इस मुद्रा का उल्लेख नहीं है। पर नवलकिशोर प्रेस से 'आईने-अकबरी' का जो संस्करण १ नवम्बर सन् १८९३ ई० को प्रकाशित हुआ था उसमें सिक्कों के सम्बन्ध मे एक परिशिष्टांश है, उसमें महराबी जदीद का उल्लेख है। किन्तु परिशिष्ट की टिप्पणी मे यह बात लिखी है कि 'आईने-अकबरी' मे इसका जिक्र नहीं है। जुलाई सन १९३१ ई० के 'हिन्दुस्तानी' मे इसी सिक्के के सम्बन्ध में लिखा है,—"एक और मुहर आगरा टकसाल मे अकबर के उनचासवे (४९वें) सन् इलाही मे जारी हुई थी। इसका एक नमूना लखनऊ के अजायब घर मे भी है।" यह सिक्का सन १६०४ का है, और 'आईने अकबरी' के लेखक की हत्या १२ अगस्त सन् १६०२ को हो चुकी थी। संभवत इसी से "आईने अकबरी" मे इसका समावेश नहीं होसका।

उसी 'हिन्दुस्तानी' में एक और सिक्के के बारे मे लिखा है,—"ब्रिटेन के अजायब घर मे एक बहुत ही नायाब मोहर इलाही सन ५० की मौजूद है। उस पर एक ओर एक बतख बनी हुई है और दूसरी ओर "अल्लाहु अकबर ५० खुरदाद, जरब आगरा लिखा हुआ है।" इसका भी उल्लेख आईने अकबरी मे नहीं है।

नवलकिशोरी के परिशिष्टांश मे एक दूसरे प्रकार की मोहर - गिर्द जदीद का उल्लेख है। वह ११ माशे की थी। उसके एक ओर रामचन्द्र और सीता का चित्र और देवनागरी लिपि मे शब्द "राम" तथा दूसरी ओर "फरवर्दीन इलाही ५०" अङ्कित है।

इसी प्रकार अकबर के और भी नाना प्रकार के सिक्के है, जो संग्रहालयों मे सुरक्षित है, परन्तु 'आईने अकबरी' मे उनका उल्लेख नहीं है।

(२१) **निस्फ़ी सलीमी**—अदुल गुटके का चौथाई।

(२२) **पंज**—इलाही का पंचमांश।

(२३) **पाण्डौ**—लाल जलाली का पांचवां भाग एक ओर 'लाला'[१] और 'नसरीन'[२] खुदा हुआ है।

(२४) **समनी**—इसे **अष्ट सिद्ध** भी कहते हैं। यह मोहर इलाही का अष्टमांश है। एक ओर 'अल्लाहो अकबर' और दूसरी ओर 'जल्ल जलाल हू'।

(२५) **कला**—इलाही का सोलहवां भाग, दोनो ओर नसरीन के फूल खुदे हुये हैं।

(२६) **ज़र्रा**—इलाही का बत्तीसवां हिस्सा, इसमें आकार कला के समान है।

नियम यह है, कि सम्राट् की टकसाल में सोने से प्रति मास, लाल जलाली, धन और मन के सिक्के मुद्रित किये जाते हैं, परन्तु अन्य मुद्रा बिना नई आज्ञा के अङ्कित नहीं होते।

रौप्य मुद्रा।

(१) **रुपया**[३]—चांदी का नगद है, गोल ११$\frac{१}{२}$ माशे भर का। यह पहले, शेर खाँ के समय मे प्रविष्ट हुआ और इस प्रतापी राज्य मे पूर्णता को पहुँचा, एवं नवीन अंक खोदे गये। एक ओर "अल्लाहो अकबर जल्ल जलाल हू"; और दूसरी तरफ तारीख़। यद्यपि इसका भाव ४० दाम से घटता बढ़ता रहता है; परन्तु वेतनादि के सम्बन्ध मे इसकी यही दर स्थिर रहती है।

१—पोस्त का लाल रंग का फूल, जिसमें प्रायः काली खस खस पैदा होती है।

२—सेवती।

३—"एक ओर चांदी का सिक्का है, जोकि बहुत ही दुष्प्राप्य है, परन्तु सौभाग्य से लखनऊ अजायब घर के लिए प्राप्त कर लिया गया है। उस पर रुपया शब्द लिखा हुआ है। इसके संबन्ध में मुख्य बात यह है कि किसी चांदी के सिक्के पर *रुपया शब्द नहीं लिखा है। यद्यपि साधारणतः चांदी के विशेष तौल के सिक्के को* रुपया कहते हैं" (हिन्दुस्तानी जुलाई सन् १९३१) 'आईने-अकबरी' में इसका भी उल्लेख नहीं है।

रुपया, संस्कृत में रूप्य शब्द से निकला है। कौटिल्य ने लिखा है—"लक्षणाध्यक्ष लोहा, रांगा, जस्त, काला सुरमा, आदि में से किसी एक का एक माशा, चौथाई तांबा तथा चांदी लेकर रुपया (रूप्य रूप) बनवावे" (कौटिल्य का अर्थ शास्त्र, अधिकरण २)। हिन्दुओं के अनेक प्राचीन चांदी *के सिक्के मिल चुके हैं। विल्सन के* मतानुसार रुपए का चलन शेरशाह ने १५४२ ई० में चलाया। "हाब्सन जाब्सन"

(२) **जलाला**—वर्गाकार, इस वैभवशाली राज्य में इस प्रकार का बनाया गया। तौल और अङ्क रुपए के सदृश।

(३) **दर्ब**—जलाला का अद्धा।

(४) **चरन**—जलाला का चौथाई।

(५) **पाण्डौ**—जलाला का पाँचवाँ भाग।

(६) **अष्ट**—जलाला का आठवाँ भाग।

(७) **दसा**—जलाला का दसवाँ भाग।

(८) **कला**—जलाला का सोलहवाँ हिस्सा।

(९) **सूकी**—जलाला का बीसवाँ भाग।

जलाला की तरह गोल रुपए की भी उपर्युक्त रेजगारी बनाई जाती है, पर उनकी सूरत शकल में भिन्नता होती है।

ताम्र-मुद्रा।

१—**दाम**१—तांबे का सिक्का है, ५ टांक का, जिसका वज़न १ तोला ८ माशे ७ रत्ती होता है। यह रुपए का चालीसवां भाग है। पहले इसे **पैसा** कहते

के अनुसार मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं की तरह पर रुपया बनाया था। परन्तु रुपया शब्द शेरशाह के समय में ही प्रसिद्ध हुआ। यह सम्भव भी है। फ़ारसी अक्षरों में यदि रूप्य शब्द लिखें तो रूप्य का शुद्धोच्चारण न जानने वाला व्यक्ति उसे रुपया, 'रुपियह' आदि पढेगा। अनुमान होता है, पढाई लिखाई में ही रूप्य का नाम रुपया पड गया।

मोरलैण्ड लिखते हैं अकबर का "चाँदी का मुख्य मुद्रा १७२$\frac{1}{2}$ ग्रेन का रुपया था, जो वज़न में आज कल के रुपए के बराबर था। तांबे का ख़ास सिक्का दाम था। इनमें से प्रत्येक के खंड मुद्रा भी थे। रुपए का सबसे छोटा खंड मुद्रा उसका बीसवाँ भाग (सूकी) था, और दाम का अष्टमांश या दमड़ी।.... रुपए का तुलनात्मक मूल्य अंग्रेज़ी सिक्कों में २ शिलिङ्ग ३ पेन्स था" (India at the Death of Akbar, P 55)।

ब्रिटिश सरकार के प्रारम्भिक सिक्कों के चार नमूने ब्रिटिश म्यूज़ियम में हैं। उनमें से एक पर एक तरफ़ The rupee of Bombaim. 1677 By authority of Charles the Second, और दूसरी तरफ़ King of Great Brittaine, France and Ireland लिखा हुआ है। यह तौल में १६७.८ ग्रेन है (हाब्सन जाब्सन)। चांदी के भाव के घटने बढ़ने के अनुसार, शिलिङ्ग के मुकाबले में, रुपए का तुलनात्मक मूल्य घटता बढ़ता रहता था। १८९८ ई० में पार्लामेंट के एक ऐक्ट के अनुसार इसकी दर १ शिलिङ्ग ४ पेंस नियत हुई थी। प्रचलित कलदार रुपए की तौल १८० ग्रेन है; जिसमें १६५ ग्रेन चांदी और १५ ग्रेन अन्य धातुएं रहती हैं।

१—कई लेखकों के मतानुसार ग्रीक भाषा के "मुख्य सिक्कों के नाम भारतीय

थे और **बहलोली** भी। आज कल यह दाम के नाम से प्रसिद्ध है। इसके एक ओर अंकित होने का स्थान, और दूसरी तरफ़ साल और महीना खुदा हुआ है। हिसाब करने वाले हर दाम को २५ भागों में विभाजित करते है, और हर भाग को **जीतल**[१] कहते है। यह काल्पनिक विभाजन हिसाब किताब मे काम आता है।

२—**अधेला**—दाम का आधा।

३—**पावला**—दाम का चौथाई।

४—**दमड़ी**—दाम का आठवां भाग।

इस शासन के आरम्भ मे, सोना, अनेक स्थानों पर सम्राट् के श्रेष्ठ नाम से उच्च पद प्राप्त करता था, अर्थात् बहुत जगहों पर सिक्के बनाये जाते थे; पर आज कल वे चार स्थानो के अतिरिक्त और कहीं नहीं अंकित होते है, यथा:—राजधानी, बंगाला, अहमदाबाद और काबुल। चांदी और तांबे के सिक्के उपर्युक्त चार जगहों

भाषाओं में समाविष्ट हो गये। द्रम्म (वर्तमान दाम) ग्रीक शब्द ड्रैकमी ($\theta\rho\alpha\chi\mu\eta$) का विकृत रूप है और दीनार दीनारियस का रूपान्तर है" (Rawlinson's Intercourse Between India and the Western world, P 167, Ed 1916)। आप्टे के कोष मे भी उपर्युक्त मत का समर्थन किया गया है। द्रम्म शब्द भास्कराचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ लीलावती में आया है—वराटकानां दशकद्वय यत् साकाकिणी ताश्च पणश्चतस्रः; ते षोडश द्रम्म इहाव गम्यो द्रम्मैस्तथा षोडशभिश्च निष्कः—अर्थात् बीस कौड़ियो की एक काकिणी, ४ काकिणी का १ पण, १६ पण का १ द्रम्म और १६ द्रम्म का १ निष्क। अकबर के राजत्व काल मे दाम आज कल के पैसे की तरह चलता था। पीछे से जीतल की तरह दाम भी एक काल्पनिक मुद्रा रह गया। कारनेगी (Carnegie) ने अवध के काल्पनिक सिक्कों की तालिका इस प्रकार निर्मित की है:—

२६ कौड़ी = १ दमड़ी
१ दमड़ी = ३ दाम
२० दमड़ी = १ आना
२५ दाम = १ पैसा।

अकबर के समय में सिक्कों में दाम एक विशेष महत्व की चीज़ था। "शाही रजिस्टरों के अनुसार दिल्ली के बादशाहों के सब प्रदेशो का राजस्व ६ अरब ३० करोड़ दाम या २ करोड़ ५० लाख रुपए था" (Muhammad Sharif, in Elliot, vii 138)। 'आईने-अकबरी' में भी वेतन, राजस्व आदि सबका उल्लेख दामों में है।

१—जीतल भारतवर्ष का बहुत पुराना तांबे का सिक्का है। पश्चिमी घाट पर यह बहुत दिनो तक चलता रहा था; परन्तु अब इसका पता नही है। ई० टामस के अनुसार अलाउद्दीन का जीतल तंगा का (जिसका पीछे से रुपया नाम पड़ गया) $\frac{1}{64}$ भाग या वर्तमान समय के पैसे के बराबर था। परन्तु इसका चलन अलाउद्दीन के पहले से था, जैसा कि नीचे के उदाहरणों से प्रकट होता है। "कुतबुद्दीन (११९३—९४) की आज्ञा से निज़ामुद्दीन मुहम्मद जब दिल्ली लौटा था,

में तथा निम्नलिखित दस और स्थानों मे बनाये जाते हैं,—इलाहाबास (इलाहाबाद), आगरा, उज्जैन, सूरत, देहली, पटना, काश्मीर, लाहौर, मुल्तान और टांडा। पर निम्नलिखित अट्ठाइस स्थानों पर केवल तांबे के सिक्कों का मुद्रण होता है,—अजमेर, अवध, अटक, अलवर, बदायूं, बनारस, भक्कर, बहेरा, पटन, जौनपुर, जालन्धर, हरिद्वार, हिसारफीरोजा, कालपी, ग्वालियर, गोरखपुर, कलानोर, लखनऊ, मंदू, नागोर, सरहिन्द, स्यालकोट, सरोंज, सहारनपुर, सारंगपुर, सम्बल, क़न्नौज, रणथम्भोर। [१]

इस समृद्धिशाली देश मे अधिकतर लेन देन मोहर-गिर्दे, रुपया[२] और दामों से होता है। लालची खोट्टे सिक्कों के माल को घिसकर तथा दूसरे उपायों से खराब करके मनुष्यों को बड़ी हानि पहुचाते है। इस लिए सम्राट् समय की गति पहचान कर सदा कार्य कुशल व्यक्तियों के मतानुसार नए कानून बनाता रहता है, और इस हानिप्रद व्यवहार का इलाज कर देता है।

सिक्कों के आईनों मे कई बार परिवर्तन हुये[३]। पहले, (जलूसी सन २७, १५८२ ई०) मे, जब कि शासन का प्रबन्ध-भार **राजा टोडरमल**[४] के हाथों मे था,

---

तो वह अपने साथ दो ग़ुलाम राजधानी दिल्ली में लाया था। मलिक क़ुतबुद्दीन ने उन दोनों तुर्कों को १००००० जीतल को ख़रीद लिया था" (Raverty Tabkat i Nasiri, P 603)। १२९० ई० में "दिल्ली में दुर्भिक्ष पड़ा था, उस समय अन्न एक जीतल का केवल सेर भर मिलता था" (Zia-ud-din Barni, in Elliot, iii 146)। अकबर के समय मे यह काल्पनिक-मुद्रा रह गया था। मध्य काल मे पुर्तगीज़ों का सेइटिस (Ceitile या Zoitoles) नामक तांबे का एक छोटा सिक्का था। कदाचित् यह और जीतल शब्द एक हो (Fernandes in Memorias da Academia Real das Sciencias de Lisboa, 2 da Classe, 1856)। "ग़यासुल्लुग़ात" के अनुसार जीतल शब्द हिन्दी का है।

१—"बाबर ने सात टकसालें स्थापित कीं और हुमायूं के समय मे नौ और अकबर के समय में बहत्तर तक हो गईं, परन्तु औरंगज़ेब के समय मे वे केवल अडसठ रह गई थी।" (हिन्दुस्तानी)

२—मुगलों का मुद्रा निर्माण-कार्य साधारणतया उस समय के यूरोपीय सम्राटों से अत्यधिक उत्तम था; और अकबर के सिक्के धातु की शुद्धता, तोल की पूर्णता एवं कला की दृष्टि से विशेष रूप से उत्कृष्ट थे [Mughal Rule in India by H L O Garret, M A, 1930, P 218]।

३—यह वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं है। प्रसग को स्पष्ट करने के लिए इसे ब्लाक्मैन के अनुवाद के अनुसार जोड़ दिया गया है।

४—राजा टोडरमल का जन्म लाहोर मे एक खत्री के घर में हुआ था। अकबर के राजत्व काल के अट्ठारहवें वर्ष मे, संभवत वह नौकर हुआ। पहले पहल उसको गुजरात का झगडा तय करने का काम सौंपा

सम्राट् ने चार प्रकार की मोहरे प्रचलित की थीं। पहली—लाल जलाली, उस पर सम्राट् का नाम खुदा हुआ था; उसकी तौल १ तोला १$\frac{3}{4}$ रत्ती, खराई मे पूरी, और मूल्य ४०० दाम था। दूसरी वह मोहर थी, जिसको सम्राट् ने अपने शासन के आरम्भिक काल में जारी किया था। इसका वजन ११ माशे था। यह तीन प्रकार की थी। पूर्णतया खरी और तौल मे भी पूरी होने पर उसका मूल्य ३६० दाम होता था। चलन के अनुसार यदि वह तीन चावल तक घिस जाती थी, तो उसी कोटि की मानी जाती और मूल्य मे कम नही की जाती थी। पर जो मोहर चार चावल से छे चावल तक घट जाती थी, वह दूसरे दर्जे का नगद ख्याल किया जाता था, और उसका मूल्य ३५५ दाम होता था। अगर छे से नौ चावल तक घट जाती, तो लोग उसको तीसरे दर्जे का मुद्रा मानते थे, और उसका मूल्य ३५० दाम रह जाता था। इससे भी अधिक घिसी हुई मोहर को बिना सिक्का किया हुआ सोना मानते थे।

रुपया, तीन प्रकार का चलता था। पहला, चौकोण—खालिस चांदी का, तौल ११$\frac{1}{2}$ माशे, नाम **जलाला,** मूल्य ४० दाम। दूसरा, गोल, पुराना **अकबर शाही** रुपया—तौल मे पूरा या एक रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३६

गया। उन्नीसवें वर्ष में उसने बंगाल में मुनीम खाँ के साथ काम किया, और पीछे से तीन साल फिर गुजरात में। सत्ताइसवें वर्ष वह राज्य का दीवान बनाया गया। इस साल उसने राजस्व सम्बन्धी नई व्यवस्था जारी की। बत्तीसवें वर्ष किसी खत्री ने उसपर आक्रमण किया। इसी साल वह बीरबल की मृत्यु का बदला चुकाने के लिए, यूसुफ़ज़इयो पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। अब टोडरमल वृद्ध हो चुका था, इस लिए चौतीसवें साल मे उसने त्यागपत्र दे दिया। अकबर ने उसको अनिच्छा से स्वीकार किया। अंतिम जीवन उसने गंगातट पर व्यतीत किया; जहाँ १० नवम्बर सन् १५८९ ई० को उसका स्वर्गवास हो गया। राजा टोडरमल ने अपनी बुद्धि प्रखरता से चार हज़ारी पद प्राप्त किया था। वह माली मामलों की समझदारी के लिए जितना प्रसिद्ध था, वैयक्तिक साहस के लिए भी उतना ही ख्यातिनामा था। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम दहारू था। वह भी वीर था। जैसे उसका पिता ४००० सैनिकों का स्वामी था, वैसे ही उसका पुत्र भी ७०० का मनसबदार था। ठट्ठ के युद्ध मे वह वीर गति को प्राप्त हुआ था।

अबुल फ़ज़्ल, टोडरमल को व्यक्ति गत रूप से पसन्द नही करता था, परन्तु उसने उसकी दृढ़ता और योग्यता की प्रशंसा की है। वह उसपर हिन्दुओं का कट्टर पक्षपाती होने का लांछन लगाता था। यहाँ तक कि उसने इसकी शिकायत खुल्लम खुल्ला अकबर से की थी। पर सम्राट् ने टोडरमल की राजभक्ति और सेवाओं का स्मरण करके उत्तर दिया कि "मैं एक वृद्ध सेवक को पृथक् नहीं कर सकता हूं।"

टोडरमल हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी

दाम; और दो रत्ती तक कम होने पर मूल्य ३८ दाम। इससे अधिक घिसा हुआ रुपया चांदी के भाव में लिया जाता था।

दूसरी बार, १८ मेहर सन २६ इलाही में, जब अजदुद्दौला अमीर फ़तहउल्ला शीराज़ी[1] राज्य का अमीन नियुक्त हुआ, तो शाही फ़रमान (राजाज्ञा पत्र) जारी हुआ, कि मोहर में तीन चावल और रुपये में छ चावल तक की घिसावट को, कम न माना जाय। इससे अधिक कम होने पर, न्यूनता के अनुसार मूल्य काटा जाय। यह नहीं, कि नौ चावल तक की कमी का यकमांही ख्याल किया जाय। इस कारण से एक रत्ती कम वाली मोहर का मूल्य ३५५ दाम और कुछ भिन्न नियत हुआ। और एक रत्ती अंकित सोने की दर चार दाम और कुछ भिन्न मानी गई। पहले (टोडरमल के)

था। एक बार बादशाह के साथ उसको पंजाब जाना पड़ा। प्रस्थान की शीघ्रता में उसकी उपास्य श्री मूर्तियां खो गईं। वह बिना पूजन किये कोई कार्य नहीं करता था। इस लिए अन्न की ओर उसको कई दिन बिना अन्न जल के रहना पड़ा। जब इस घटना की सूचना सम्राट् को मिली, तो उसने बड़ी कठिनाई से उसको सान्त्वना दी। उसके और बीरबल के धार्मिक विचारों में कुछ अन्तर था। बीरबल स्वर्ग-यात्रा के पहले ही 'दीन इलाही' मत का सदस्य हो चुका था, परन्तु टोडरमल ने अन्त तक उसको स्वीकार नहीं किया था। [विशेष विवरण के लिये द्वितीय ग्रंथ में मंसबदार न० ३६ के जीवनचरित को देखिये।]

१—अमीर फ़तहउल्ला, शीराज़ (फ़ारस) का रहने वाला था। तत्वज्ञान और पदार्थ विज्ञान इसका चढ़ा बढ़ा था। यंत्र कला में वह विशेष दक्ष था। उसके गुणों पर मुग्ध होकर अबुल फ़ज़्ल कहा करता था, "यदि प्राचीन ग्रन्थ नष्ट हो जांय, तो अमीर उनका पुनर्निर्माण कर सकता है।" बीजापुर के आदिलशाह ने उसे फारस से दक्षिण प्रदेश में बुलाया था। सन ९९१ हि० में जब आदिल शाह का स्वर्गवास हो गया, तो सम्राट् अकबर ने उसे बुला लिया, और सद्र (प्रधान) का पद प्रदान किया। तीन साल बाद उसने उसको अमीनुलमुल्क की उपाधि प्रदान की। वह राजा टोडरमल की सहायता के लिए नियत किया गया। उसने उक्त कार्य बड़ी तत्परता से किया। अकबर ने प्रसन्न होकर उसकी उपाधि बदल दी और अज़दुद्दौला (राज्य की भुजा) की पदवी से उसे विभूषित किया। इसके बाद वह खानदेश गया। सन ९९७ में जब वह वापस आ रहा था, अकबर उस समय काश्मीर में था, अमीर फ़तहउल्ला को ज्वर आ गया। यह सोचकर कि "मैं हिकमत का ज्ञाता हूं, सब बातें जानता हूं, जो कुछ भी उपचार करूंगा, ठीक होगा", हकीम अली के विरोध करने पर भी हरीसा (एक प्रकारका हरीरा—जो गेहूं, मांस, घी, नमक और मसाला आदि से बनता है) खा लिया, जिससे वह मर गया।

अबुल फ़ज़्ल, फैज़ी और बीरबल के बाद बादशाह सबसे अधिक प्रेम अमीर

कानून के अनुसार, मोहर में एक रत्ती कम होने पर पांच दाम घटाते थे, और तीन चावल से अधिक की कमी में भी यदि वह कमी आधा चावल होती, तो पाँचही दाम का हिसाब लगाते थे। १ १/२ रत्ती की कमी के लिए, लेन देन में १० दाम कम किये जाते थे। यदि इतनी कमी न भी होती, तो भी दस दाम का ही हिसाब लगाते थे। परन्तु नए कानून (अज़दुद्दौला के कानून) के अनुसार वह ६ दाम और कुछ भिन्न घटाई गई और उसका मूल्य ३५३ दाम और कुछ भिन्न रह गया[१]। अज़दुद्दौला ने उस कानून को भी रद्द किया, जिसके द्वारा गोल रुपए का मूल्य, उसके पूर्णतया खरे होने और तौल में पूरे होने पर भी, चौकोर रुपए से एक दाम कम माना जाता था। एक रत्ती तक कम होने पर भी, उस गोल रुपए का मूल्य ४० दाम नियत किया। पहले यदि रुपया दो रत्ती कम होता, तो उसका मूल्य दो दाम कम समझा जाता था। पर अब उतनी ही कमी के लिए, उसके मूल्य में एक दाम और कुछ भिन्न कम किया जाता है।

तीसरे, जब अज़दुद्दौला खानदेश गया, तो राजा टोडरमल ने मोहर का मूल्य, जो जलाला रुपयों में लगाया जाता था, गोल रुपयों में नियत कर दिया; और अपने स्वाभाविक पक्षपात तथा हठधर्मी से मोहर और रुपए की कमी को पहली रीति के अनुसार मुकर्रर किया।

चौथे, जब राज्य की रक्षा का भार कुलीज खाँ[२] पर आपड़ा, तो उसने मोहरों के मूल्य कूतने का नियम वही स्वीकार किया, जो कि राजा टोडरमल ने

फ़तहउल्ला से करता था। कई आविष्कार भी उसने किये थे, परन्तु अबुल फ़ज़्ल ने उनको अकबर के नाम से विख्यात किया है। अमीर की अबुल फ़ज़्ल से अच्छी बनती थी। उसके पुत्र को अमीर ने शिक्षा दी थी। "मीरातुल आलम" के लेखक के मतानुसार वह एक संसारी जीव था। बहुधा जब वह बादशाह के साथ शिकार में जाता था, तो कंधे पर बन्दूक़ और फेंट में बारूद रखकर शक्ति का प्रदर्शन करता हुआ चलता था।

"मआसिरुल उमरा" के लेखक का कथन है कि कुछ लोगों के मतानुसार वह तीन हज़ारी मंसबदारों में था। उसका नाम "तबक़ाते-अकबरी" अथवा "आईने-अकबरी" के मंसबदारों की सूची में नहीं है।

१—अज़दुद्दौला ने १ रत्ती मुद्रित सोने का मूल्य चार दाम और कुछ भिन्न नियत किया था। इसलिए पूरी तौल अर्थात् ११ माशे भर की मोहर का मूल्य (११ माशे × ८ रत्ती × ४ + कुछ भिन्न = ३५२ + कुछ भिन्न या लगभग ३५३ दाम या उससे कुछ अधिक) अबुल फ़ज़्ल के मतानुसार ३५३ दाम और कुछ भिन्न था। पहले इसी का मूल्य ३६० दाम था।

२—क़ुलीज अकबरी शासन के १७ वें वर्ष में, सबसे पहले सूरत के दुर्ग का शासक बनाकर भेजा गया था; जिसको अकबर ने ४७ दिन के घेरे के बाद जीत लिया

निश्चित किया था। परन्तु राजा मोहर की जितनी कमी के लिए, पांच दाम कम करता था, कुलीज खां ने उसके लिए १० दाम घटाकर क्रय-विक्रय का बाज़ार परिचालित किया। जिस मोहर मे राजा दस दाम कम करता था, उसने उसके लिए दुगना (२० दाम) घटाया जाना नियत किया। जो मोहर १½ रत्ती से अधिक कम होती थी, उसकी गणना उसने बिना सिक्का किये हुये सोने मे की। जो रुपया[1] एक रत्ती से अधिक कम होता उसको वह बिना अंकित की हुई चांदी ख्याल करता था।

सम्राट् राजाज्ञा-रक्षकों पर विश्वास करता था, और कार्यों की अधिकता के कारण वह पहले इस ओर बहुत कम ध्यान देता था। जब इस कारखाने के कुप्रबन्ध था। कुलीज खां तेइसवें वर्ष गुजरात भेजा गया; और शाह मंसूर की मृत्यु के बाद वह पिछले दो साल के लिए दीवान नियत हुआ। अट्ठाइसवें वर्ष गुजरात की विजय में फिर उसने भाग लिया। चौंतीसवें वर्ष उसे संभल की जागीर मिली। टोडरमल की मृत्यु के बाद, वह फिर दीवान बनाया गया। इसी समय उसने सिक्कों के मूल्य मे हेर फेर किया। सन् १००२ हिजरी में वह काबुल का गवर्नर नियुक्त हुआ। परन्तु वहां वह असफल रहा। सन् १००५ हिजरी मे वह अपने जामात्र शाहज़ादा दानियाल का शिक्षक बना। सन् १००७ हिजरी में, जब कि बादशाह खानदेश मे था, वह आगरे की गवर्नरी पर तैनात था। दो वर्ष बाद वह पंजाब और काबुल का सूबेदार नियुक्त किया गया। जहांगीर के गद्दी पर बैठने के बाद वह गुजरात भेजा गया, परन्तु दूसरे ही वर्ष पंजाब वापस गया। जहां उसको रौशनाइयों से युद्ध करना पड़ा। सन् १०३५ हिजरी में उसकी मृत्यु हो गई। अपनी योग्यता द्वारा उसने चार हज़ारी की पदवी प्राप्त की थी। वह पक्का सुन्नी था। वह कवि भी था। उसका कविता सम्बन्धी नाम 'उलफ़र्ती' था।

१—संसार के वर्तमान समय के मुख्य सिक्कों और अकबरी रुपये मे कितना अन्तर है, यह इस तालिका से जाना जाता है। इस में सब सिक्कों का तुलनात्मक मूल्य शिलिङ्ग और पैंसो में है। अकबरी रुपया आज कल के हिसाब से लगभग २ शिलिङ्ग ३ पैंस का था, और भारतवर्ष का प्रचलित कल्दार रुपया इस तालिका के अनुसार इङ्गलैण्ड के १ शिलिङ्ग ६ पैंस के बराबर है। विनिमय तथा सोने चांदी के घटने बढ़ने के अनुसार इनके मूल्य में भी कमी बेशी होती रहती है।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य शि०	पैंस
अर्जेनटिना	पेसो (कागज़) = १०० सेन्तावो	१	८
	,, (स्वर्ण) = ,, ,,	४	०
आस्ट्रिया	शिलिङ्ग = १०० ग्रोशेन	०	७
बेलजियम	फ्रैंक = १०० सेण्टाइमस्	०	१½

की खबर उस तक पहुँची, तो उसने एक उत्तम व्यवस्था निर्धारित की, जिससे सुदूरवर्ती और निकटवर्ती आनन्दित हुये और संसार हानि उठाने से बच गया।

देश	मुख्य सिक्का	तुलनात्मक मूल्य	
		शि०	पं०
बेलजियम	बेलगा = ५ फ्रैंक	०	७
ब्रेज़िल	क्रूज़ीरो = ४ मिलरेई	२	०
	मिलरेई (कागज़) = १००० रेई	०	६
ब्रिटिश हराडूरास (अमेरिका)	डालर (स्वर्ण) = १०० सेरटस्	४	१
बुलगेरिया	लेव = १०० स्टॉटिकी	०	० १/२
कनाडा	डालर (स्वर्ण) = १०० सेरटस	४	१
लङ्का	रुपया = १६ आना	१	६
चिली (दक्षिणी अमेरिका)	पेसो (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	०	६
चीन	टाएल (Tael) (डालर) = १०० ताम्र मुद्रा	२	८
क्यूबा (मैक्सिको की खाड़ीमें)	पेसो (स्वर्ण) = १ डालर (अमेरिका)	४	१
चेको-स्लोवाकिया	क्रोन	०	१ १/२
डेनमार्क	क्रान = १०० ऊर	१	१ १/४
मिस्र	मिस्री पौराड = १०० पियास्टरस्	२०	६ १/४
फिनलैराड	मर्का = १०० पेनी	०	१ १/४
फ्रान्स	फ्रैंक = १०० सेन्टाइमस्	०	२
जरमनी	राइशमार्क = १०० फेनीक (Pfennige)	०	११ ३/४
ग्रीस	ड्राकमा = १०० लेप्टा	०	० १/२
हालैराड	फ्लोरिन = १०० सेराटस्	१	८
हंगेरी	पेंगो = १०० फ़िलर	०	८ १/२
हिन्दुस्तान	रुपया = १६ आना	१	६
इटली	लीरा = १०० सेराटाइमस्	०	२ १/२
जापान	येन = १०० सेन	२	० १/२
मारिशस	रुपया = १६ आना	१	६
मैक्सिको	डालर (स्वर्ण) = १०० सेन्तावो	२	० १/२
	पेसो (स्वर्ण) = ५० सेराटस् (अमेरिका)	२	० १/२
न्यूफ़ाउराडलैराड	डालर (स्वर्ण) = १०० सेराटस्	४	१
नार्वे	क्रोन = १०० ऊर		१ १/२